ओ३म्
आयुर्वेद
सिद्धान्त रहस्य

13. आत्मा

आत्मा क्या है?

आयुर्वेद शास्त्र का मुख्य उद्देश्य है- पुरुष अर्थात् शरीर को स्वस्थ रखना।[218] इस पुरुष का निर्माण केवल कुछ महाभूतों और रासायनिक जड़ पदार्थों के मिश्रण से ही नहीं हुआ है बल्कि पंच महाभूत, मन, बुद्धि और आत्मा के संयोग का नाम ही पुरुष या जीवन है।[219] पंचमहाभूतों के साथ-साथ उनसे निर्मित चक्षु आदि इन्द्रियाँ और मन भी जड़ हैं। इनमें एक चेतन तत्व है- आत्मा।[220] इसे ही सब कर्मो का कर्ता और कर्म-फल का भोक्ता माना जाता है, क्योंकि सारी इन्द्रियों के विद्यमान रहने पर भी यदि आत्मा निकल जाए, तो शरीर मृत कहलाता है। इस अवस्था में कोई भी इन्द्रिय कार्य नहीं कर सकती और न ही शरीर किसी प्रकार के सुख-दुःख का अनुभव कर सकता है अतः आत्मा को ही चेतना का अधिष्ठान (आधार) माना गया है।[221]

शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता। यह नित्य है तथा शरीर से भिन्न है। मृत्यु के समय देह का नाश होने पर यह कर्मानुसार दूसरे देह में प्रवेश करता है। चेतन होते हुए भी, स्वतन्त्र रूप से शब्द, स्पर्श, रूप, आदि विषयों का ज्ञान-प्राप्ति के लिए इसके साथ करणों (अर्थात् मन, बुद्धि और इन्द्रियां) का संयोग होना आवश्यक है।[222] जब आत्मा मन से, मन इन्द्रिय से और इन्द्रिय विषय से जुड़ता है, तभी ज्ञान प्राप्त हो पाता है।[223]

♦ आत्मा के गुण

1- सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, श्वास-उच्छ्वास, (श्वास लेना और बाहर निकालना), निमेष-उन्मेष (पलक झपकना और खोलना), बुद्धि (विचार), मन का संकल्प, स्मृति, विज्ञान (शास्त्र का ज्ञान), इन्द्रियान्तर संचार (एक इन्द्रिय से दूसरी इन्द्रिय में जाना), शब्द आदि विषयों का ग्रहण, प्रेरणा,

---

218. "स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम् आतुरस्य विकार प्रशमनं च।।" च.सू. 30/26
"इह खल्वायुर्वेद प्रयोजनं व्याध्युपसृष्टानां व्याधि परिमोक्षः स्वस्थस्य रक्षणञ्च।।" सु.सू. 1/22

219. "शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।
नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्य्यायैरायुरुच्यते।।" च.सू. 1/42

220. "तत्रायुश्चेतनानुवृत्तिः" च.सू. 30/22

221. "तत्र शरीरं नाम चेतनाधिष्ठानभूतं पञ्चमहाभूतविकारसमुदायात्मकम्।।" च.शा. 6/4

222. "आत्ममनसोः संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्मृतिः।" (वैशेषिक दर्शन) 9/2/6
आत्मा ज्ञः करणैर्योगाज्ज्ञानं त्वस्य प्रवर्तते।
करणानामवैमल्यादयोगाद्वा न वर्तते। च.शा. 1/54

223. "मनः पुरः सराणीन्द्रियाण्यर्थग्रहणसमर्थानि भवन्ति।
तत्र चक्षुः श्रोत्रं घ्राणं रसनं स्पर्शनमिति पञ्चेन्द्रियाणि।।" चरक सूत्र 8/7-8

धारणा, स्वप्न में स्थानान्तर (दूसरे स्थान पर जाना), एक इन्द्रिय द्वारा प्राप्त ज्ञान का दूसरी इन्द्रिय में पहुँचना (जैसे- बाई आँख से देखी गई वस्तु का ज्ञान दाई आँख को भी होना), धैर्य तथा अहंकार-ये सब गुण आत्मा के माने जाते हैं क्योंकि ये सब लक्षण केवल जीवित मनुष्य में ही मिलते है, मृत में नहीं। वस्तुतः आत्मा की विद्यमानता में ही सब इन्द्रियाँ और मन आदि करण कार्य करने में समर्थ होते हैं। आत्मा द्रष्टा रूप में ही स्थित रहता है।[224]

शरीर की चिकित्सा भी तभी तक की जाती है, जब तक उसमें आत्मा विद्यमान रहता है। आत्मा के निकल जाने पर मृत कहलाने वाले शरीर की चिकित्सा करना निरर्थक होता है।[225]

14. मन

शरीर में इन्द्रियाँ जो भी कार्य करती है, वे सब मन के सहयोग से ही करती हैं। मन के बिना कोई भी इन्द्रिय ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकती। अतः मन को महत्वपूर्ण अंग माना गया है।[226] इसकी गणना ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों में की जाती है, अतः यह उभयेन्द्रिय (दोनों प्रकार

---

224. प्राणापानौ निमेषाद्या जीवनं मनसो गतिः।
इन्द्रियान्तरसंचारः प्रेरणं धारणं च यत्।।
देशान्तरगतिः स्वप्ने पञ्चत्वग्रहणं तथा।
दृष्टस्य दक्षिणेनाक्ष्णा सव्येनावगमस्तथा।।
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं प्रयत्नश्चेतना धृतिः।
बुद्धिः स्मृतिरहङ्कारो लिङ्गानि परमात्मनः।।
यस्मात् समुपलभ्यन्ते लिङ्गान्येतानि जीवतः।
न मृतस्यात्मलिङ्गानि तस्मादाहुर्महर्षयः।।
शरीरं हि गते तस्मिन् शून्यागारमचेतनम्।
पञ्चभूतावशेषत्वात् पञ्चत्वं गतमुच्यते।। — च.शा. 1/70-74
प्राणापानावुच्छवासनिः श्वासो।। — चक्रपाणि च.शा. में
- "इच्छाद्वेष प्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्, इति।" — न्याय दर्शन 1/1/10
प्राणाऽननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः
सुख दुःखेच्छा द्वेष प्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि।। — वै.द. 3/139
— च.शा. 1/54
"आत्मा ज्ञः करणैर्योगाज्ज्ञानं त्वस्य प्रवर्तते.
तत्त्वं जले वा कलुषे चेतस्युपहते तथा।" — च.शा. 1/55

225. "सत्त्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत्।
लोकस्तिष्ठति संयोगात् तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्।।
स पुमांश्चेतनं तच्च तच्चाधिकरणं स्मृतम्।
वेदस्यास्य तदर्थं हि वेदोऽयं संप्रकाशितः।।" — च.सू. 1/46-47

226. "मनः पुनः सराणीन्द्रियाण्यर्थग्रहण समर्थानि भवन्ति।।" — च.सू. 8/7
"अतिक्रान्तमिन्द्रियमतीन्द्रियम् चक्षुरादीनां यदिन्द्रियत्वं वाह्यज्ञानकारणत्वं, तद् त्रिकान्तमित्यर्थः — चक्रपाणि

की इन्द्रिय) कहलाता है।[227]

आयुर्वेद, योगशास्त्र और इससे सम्बन्धित अन्य ग्रन्थों में मन (Mind) के लिए 'मनस' शब्द का प्रयोग किया गया है। यह 'मन' धातु से बना है, जिसका अर्थ है-वह साधन या उपकरण, जो किसी घटना या विचार के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार है। अर्थो में अन्तर होते हुए भी चित्, हृदय, स्वान्तः तथा हृद-ये सब 'मनस' के संस्कृत पर्यायवाची शब्द हैं।[228]

मन का महत्व इसलिए अधिक माना गया है क्योंकि यह ज्ञानेन्द्रियों और आत्मा को आपस में जोड़ने वाली कड़ी है, जिसकी सहायता से ज्ञान-प्राप्ति होती है।[229] यह निर्जीव (जड़) तत्व है, जिसमें रंग, स्पर्श आदि का ज्ञान और आनन्द, पीड़ा आदि की अनुभूतियाँ नहीं पाई जाती। हाँ, इन सब की अनुभूति तभी हो पाती है, जब यह मन आत्मा के संसर्ग में आता है। प्रत्येक आत्मा में मन होता है, जो उसका आन्तरिक सहायक माना जाता है। जिस प्रकार ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान-प्राप्त करने का बाहरी साधन है, उसी प्रकार 'मन' ज्ञान-प्राप्ति का आन्तरिक साधन है क्योंकि यह अन्तःकरण के चार अंगों में एक प्रमुख अंग है।

आत्मा रथी, शरीर रथ, बुद्धि सारथी और मन लगाम है। विद्वानों ने इन्द्रियों को घोड़े, विषय को उसके आवागमन का मार्ग तथा मनोयुक्त जीवात्मा को इसके प्रयोगकर्ता के रूप में माना है। जो सदा ज्ञानरहित अर्थात अविवेक, बुद्धि एवं असंयमित मन युक्त रहता है उसकी इन्द्रियाँ बिना सारथी के दुष्ट घोड़े की भाँति हो जाती है।[230]

♦ मन का स्थान

मन का निवास हृदय और मस्तिष्क में माना गया है। ये दोनों ही अंग आपस में सम्बन्धित है, अतः इनके कार्य भी एक-दूसरे पर आधारित है आयुर्वेद के ग्रन्थों में 'हृदय' को मन का निवास

---

227. "अतीन्द्रियं पुनर्मनः सत्वसंज्ञकं चेत इत्याहुरेके, तदर्थात्मसंपत्तदायत्तचेष्टं चेष्टा प्रत्ययभूतमिन्द्रियाणाम्।" — च.सू. 8/4

228. "मन्यते अवबुध्यते ज्ञायते अनेन इति मनः।" "मननात् मनः"
"चित्तन्तु चेतो हृदयं स्वान्तं, हृन्मानसं मनः।" — अमरकोष

229. "लक्षणं मनसो ज्ञानस्याभावो भाव एव च।
सति ह्यात्मन्द्रियार्थानां सन्निकर्षे न वर्तते।
वैवृत्यान्मनसो ज्ञानं सान्निध्यात्तच्च वर्तते।।" — च.शा. 1/18

230. "आत्मानं रथिन विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथि विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।
इन्द्रियाणि हयानाहुः विषयांतेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रिय मनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।
यस्त्वविज्ञानवान भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः।।" — कठोपनिषद् 3/3-5

प्रधान कहा गया है, तो योग के ग्रन्थों में हृदय और मस्तिष्क दोनों को।[231]

♦ आकार तथा संख्या

आयुर्वेद के अनुसार, मन परमाणु आकार का है। यह संख्या में एक है तथा भौतिक है।[232]

♦ मन का कार्य

मन का प्रमुख कार्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा एकत्र किये गये उत्तेजकों का ज्ञान प्राप्त करना, तथा उस ज्ञान को अहंकार, बुद्धि आदि तक पहुँचाना है। मन ही प्रतिक्रिया के रूप में यह ज्ञान कर्मेन्द्रियों तक पहुँचाता है। इसके परिणामस्वरूप कर्मेन्द्रियाँ अपने विषयों का ज्ञान प्राप्त कर पाती हैं।[233]

♦ मन के गुण और शक्तियाँ

शरीर में वायु आदि तीनों दोषों की ही भाँति मन में भी तीन प्रकार के गुण सभी मनुष्यों में पाये जाते है- 1)सत्त्व, 2)रजस्, और 3)तमस्। ये तीनों ही गुण सभी मनुष्यों में पाये जाते है, किन्तु किसी में कोई एक गुण अधिक मात्रा में पाया जाता है, तो किसी में कोई दूसरा।[234] सत्व गुण प्रकाश अथवा ज्ञान का संकेत करता है; रजस् गुण क्रियाशीलता (कार्य में प्रवृत्ति) का; और तमस् गुण जड़ता और आलस्य का प्रतीक है।

इन तीनों गुणों के आधार पर मानसिक शक्तियाँ भी तीन प्रकार की है- सात्विक, राजसिक और तामसिक। ये तीन ही मन की प्रकृतियाँ मानी जाती है। सात्विक प्रकार के मन में शुभ लक्षण, चेतना तथा पवित्रता आदि की अधिकता होती है। राजसिक प्रकार का मन क्रोधी एवं चंचल होता है, तो तामसिक प्रकार के मन में अज्ञानता और जड़ता अधिक पाई जाती है। इसी आधार पर तीनों प्रकार की प्रकृतियों वाले मनुष्यों में सामान्य लक्षण पाये जाते है, जो निम्नलिखित है:

I. सात्विक प्रकृति मनुष्य

सात्विक प्रकृति वाले मनुष्य में सत्त्व गुण की प्रधानता और दूसरे दो गुणों की न्यूनता होती है। इस कारण उसमें विवेक, क्षमा, सन्तोष, मृदुता, दया, लज्जा, सरलता, मन तथा इन्द्रियों की निर्मलता, अनासक्ति, लघुता परोपकार, आदि गुण अधिक मात्रा में पाये जाते है।[235]

---

231. "षडङ्गमङ्गं विज्ञानमिन्द्रियाण्यर्थ पञ्चकम्।
आत्मा च सगुणश्चेताश्चिन्त्यं च हृदि संश्रितम्।।" — च.सू. 30/4

232. "अणुत्वमथ चैकत्वं द्वौ गुणौ मनसः स्मृतौ।" — च.शा. 1/19

233. "इन्द्रियाभिग्रहः कर्म मनसः स्वस्य निग्रहः।
ऊहो विचारश्च, ततः परं बुद्धिः प्रवर्तते।।" — च.शा. 1/21
"इन्द्रियेणेन्द्रियार्थो हि समनस्केन गृह्यते।.......... दोषतोऽथवा।" — च.शा. 1/22

234. "तत् (सत्वं) त्रिविधमाख्यायते-शुद्धं, राजसं, तामस मिति।।" — च.शा. 3/13
"यद्गुणं चाभीक्ष्णं पुरूषमनुवर्तते सत्वं, तत्सत्त्वमेवोपदिशन्ति मुनयो बाहुल्यानुशयात्।।" — च.सू. 8/6

235. "सात्त्विकास्तु-आनृशस्यं संविभाग रूचिता तितिक्षा.
सत्यं धर्म आस्तिक्यं ज्ञानं बुद्धिर्मेधा स्मृतिर्धृतिरनभिषङ्गश्च।" — सु.शा. 1/23

II. राजसिक प्रकृति मनुष्य

राजसिक प्रकृति वाले मनुष्य में रजस् गुण की प्रधानता और दूसरे दो गुणों की न्यूनता होती है। इस व्यक्ति मे चंचलता, द्वेष, तृष्णा, अहंकार, मद, लोभ, चुगली, शोक, विषयासक्ति तथा इन सबके परिणामस्वरूप दु:ख की प्राप्ति अधिक मात्रा में पाये जाते है।[236]

III. तामसिक प्रकृति मनुष्य

तामसिक प्रकृति वाले मनुष्य में तमस् गुण की अधिकता और दूसरे दो गुणों की न्यूनता पाई जाती है। इस प्रकृति के व्यक्ति में मिथ्या ज्ञान, अज्ञान, तन्द्रा, आलस्य, प्रमाद, निष्क्रियता, दीनता, मोह एवं गुरुत्व (भारीपन) आदि विशेषताएँ अधिक मात्रा में पाई जाती है।[237]

इन तीनों गुणों की मात्रा में न्यूनता और अधिकता होने तथा अलग-अलग अनुपात में इसका संयोग होने से मन की स्थिति असंख्य प्रकार की दिखाई देती है।

♦ मन और आयुर्वेद

यह अनुभूत तथ्य है कि प्रत्येक व्यक्ति के शारीरिक गुणों का प्रभाव उसके मन पर पड़ता है, तो उसके मानसिक गुणों का प्रभाव उसके शारीरिक गुणों पर भी पड़ता है। अत: आयुर्वेद में रोगों की चिकित्सा करते हुए रोगी के शरीर और उसकी मानसिक स्थिति को भी ध्यान में रखा गया है। वैसे आयुर्वेद में रोगों को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा गया है-

1) शारीरिक और

2) मानसिक।[238]

शारीरिक रोगों में रोग का मुख्य आधार शरीर को माना गया है, तो मानसिक रोगों में मन को परन्तु दोनों ही प्रकार के रोगों की उत्पत्ति में मन का योगदान रहता है। शरीर की भौतिक और शारीरिक क्रियाओं का नियन्त्रण मानसिक तत्व करते है तो मानसिक क्रियाओं का नियन्त्रण शारीरिक तत्व। अत: शरीर और मन का आपस में गहरा सम्बन्ध है इसीलिए शारीरिक रोगों की चिकित्सा में जहाँ मन को स्वस्थ रखने का प्रयत्न किया जाता है, वहीं अनेक मानसिक उपायों का प्रयोग भी किया जाता है।

---

236. "राजसास्तु- दु:ख बहुलताऽटनशीलताऽधृतिरहंकार आनृतिकृत्वमकारूण्यं दम्भो मानो हर्ष: काम: क्रोधश्च।।" सु.शा. 1/24

237. "तामसास्तु - विषादित्वं नास्तिक्यमधर्मशीलता बुद्धेर्निरोधोऽज्ञानं दुर्मेधस्त्वकर्मशीलता निद्रालुत्वं चेति।" सु.शा. 1/25

238. ''शरीरं सत्त्वसंज्ञं च व्याधिनामाश्रयो मत:।'' च.सू. 1/55

द्रव्य – परिचय

पिछले अध्याय में हमने शरीर को धारण करने वाले विभिन्न तत्वों जैसे- दोष धातु, मल, स्रोत आदि के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। इससे यह तथ्य भी स्पष्ट हुआ कि शरीर के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए इन सभी तत्वों को एक उचित मात्रा में और स्वस्थ अवस्था में होना चाहिए। यदि किसी दोष, धातु आदि में आवश्यकता से अधिक वृद्धि या कमी हो जाती है तो उसे क्रमशः विपरीत अथवा समान गुण वाले द्रव्यों के सेवन (भोजन या बाह्य प्रयोग) से सन्तुलित मात्रा में लाया जा सकता है। अब प्रश्न उठता है कि यह ज्ञान कैसे हो कि कौन सा द्रव्य किस दोष, धातु आदि के समान गुणों वाला है या कौन सा विपरीत गुणों वाला? इस सबको जानने के लिए हमें द्रव्य के विभिन्न पक्षों के बारे में ज्ञान होना आवश्यक है।

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि ब्रह्माण्ड में प्रत्येक वस्तु की रचना पाँच महाभूतों के मिश्रण से हुई है।[239] शरीर में स्थित दोषों, धातुओं के समान ही प्रत्येक द्रव्य का निर्माण भी इन्हीं पाँच महाभूतों के मिश्रण से ही हुआ है। किसी भी द्रव्य के आकार अथवा रंग के आधार पर हम उसमें विद्यमान प्रधान महाभूतों के बारे में अनुमान नही लगा सकते, इसके लिए हमें उस द्रव्य में पाये जाने वाले रस, वीर्य, विपाक, गुण आदि के बारे में जानकारी होनी चाहिए। इसी के आधार पर कोई वैद्य रोगी की प्रकृति आदि के अनुसार औषधि-द्रव्यों और आहार-द्रव्यों को चुनता है।

सभी औषधि द्रव्यों को अनेक प्रकार के भेदों में बाँटा गया है। मुख्य रूप से इन्हें तीन भागों में बाँटा जा सकता है:[240]

1. **पार्थिव द्रव्य** : जो द्रव्य पृथ्वी पर अथवा पृथ्वी के भीतर पाये जाते है, वे इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। मिट्टी, सुधा (चूना), रेत, पत्थर, नमक, क्षार पदार्थ, अंजन, गेरू विभिन्न धातुएं (जैसे - लोहा, ताँबा, सोना, चाँदी आदि), पारा (Mercury), उपरस, विभिन्न प्रकार के मणि, रत्न आदि इस प्रकार के द्रव्य हैं।[241]

2. **जांगम द्रव्य** : इस श्रेणी में पशु-जगत् से प्राप्त विभिन्न औषधि-द्रव्य आते हैं। चर्म (चमड़ा) रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र, दूध, पित्त, केश, लोम, नाखून, स्नायु, सींग, दाँत, खुर, कोष्ठ, अण्डाशय, पंख आदि।[242]

---

239. सर्वं द्रव्यं पाञ्चभौतिकमस्मिन्नर्थे। — च.सू. 26/10

240. ''तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं जाङ्गमौद्भिदपार्थिवम्। — च.सू. 1/69

241. सुवर्णसमलाः पञ्चलोहाःससिकताः सुधा। मनःशिलाले मणयो लवणं गैरिकाञ्जने।। — च.सू. 1/71 ; च.सू. 1/69

242. मधूनि गोरसाः पित्तं वसा मज्जाऽसृगामिषम्।। विण्मूत्रचर्मरेतोऽस्थिस्नायुश्रृङ्गनखाः खुराः। जङ्गमेभ्यः प्रयुज्यन्ते केशा लोमानि रोचनाः।। — च.सू. 1/70

3. औद्भिद (भूमि को फाड़ कर बाहर निकलने वाले) द्रव्य[243] : इस श्रेणी में पेड़ पौधे व उनसे प्राप्त द्रव्य आते है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ, फल, फूल, जड़ें, पत्ते, बीज, कन्द, शाखाएँ, पेड़ों की छाल, निर्यास (पेड़ से निकलने वाला रस), गोंद आदि पदार्थ पाये जाते है।

सभी द्रव्यों को महाभूतों के आधार पर पाँच भागों में भी बाँटा जाता है। वैसे तो प्रत्येक द्रव्य में सभी महाभूत विद्यमान होते हैं, क्योंकि सभी द्रव्य पृथ्वी का आश्रय लेकर उत्पन्न होते है। इनकी उत्पत्ति का कारण जल है तथा शेष तीन भूतों-अग्नि, वायु और आकाश के मिलने से इनकी पूरी रचना होती है और परस्पर भिन्नता आती है। परन्तु सभी में किसी एक महाभूत की प्रधानता होती है। इस आधार पर इन्हें निम्नलिखित पाँच भागों में बाँटा गया है :

1. पार्थिव द्रव्य,
2. आप्य या जलीय द्रव्य,
3. वायव्य द्रव्य,
4. तैजस या आग्नेय द्रव्य, और
5. आकाशीय द्रव्य।

इन सभी प्रकार के द्रव्यों के गुणों का उल्लेख पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

आयुर्वेद की दृष्टि से द्रव्यों का विवेचन करने के लिए रस, गुण, वीर्य, विपाक आदि में रस तत्व सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। अतः सर्वप्रथम रस का विवेचन किया जा रहा है।

1. रस (Taste)

द्रव्यों में महाभूतों की विद्यमानता जानने के लिए रस आधारभूत तत्व है। किस द्रव्य में कौन सा रस है? यह जानने के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। त्वचा से स्पर्श के ज्ञान की तरह ही जिह्वा के स्पर्श से किसी द्रव्य के रस का ज्ञान मिलता है।[244] किसी विशेष द्रव्य का, व्यक्ति के शरीर पर, क्या प्रभाव पड़ता है? इस आधार पर भी रस का अनुमान लगाया जा सकता है।

मूल रूप से रस छः प्रकार के माने गये है[245]- मधुर (मीठा), अम्ल (खट्टा), लवण (नमकीन), तिक्त (तीता), कटु (कड़वा) और कषाय (कसैला)। इनमें सबसे पहला रस (मधुर) सबसे अधिक बल प्रदान करने वाला है और अगले-अगले रस अपेक्षाकृत क्रमशः कम बल प्रदानकरने वाले है। इस प्रकार कषाय रस सबसे कम बल प्रदान करने वाला है।

---

243. उद्भिद्य पृथिवीं जायते इति औद्भिदम् वृक्षादि। च.द.
244. रसेन्द्रियग्राह्यो योऽर्थः स रसः। शि
रस्यते आस्वाद्यते इति रसः। च.द.
रसनार्थो रसस्तस्य। च.सू. 1/64
245. स्वादुरम्लोऽथलवणः कटुकस्तिक्त एव च।
कषायश्चेति षट्कोऽयं रसानां संग्रहः स्मृतः।। च.सू. 1/65

♦ रस और पंच महाभूत :

वैसे तो रस जल का स्वाभाविक गुण है, परन्तु जल में भी रस की उत्पत्ति (अभिव्यक्ति) तभी होती है, जब इसका संसर्ग अन्य महाभूतों के परमाणुओं के साथ होता है। अतः प्रत्येक रस में अलग-अलग महाभूतों की प्रधानता पाई जाती है, जो इस प्रकार है[246]

	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
रस :	मधुर	अम्ल	लवण	कटु	तिक्त	कषाय
महाभूतः	पृथ्वी	पृथ्वी	जल	वायु	वायु	वायु
	जल	अग्नि	अग्नि	अग्नि	आकाश	पृथ्वी

प्रत्येक रस में पाये जाने वाले प्रमुख महाभूतों के अनुसार ही उस द्रव्य का व्यक्ति के शरीर में विद्यमान दोषों, धातुओं आदि पर प्रभाव पड़ता है। यद्यपि मूल रूप से रस छः हैं, परन्तु अलग-अलग प्रकार से भिन्न अनुपात में इनके मिश्रण से तो असंख्य रस बन जाते हैं। इस के अतिरिक्त एक अनुरस या उपरस भी होता है, जो जिह्वा पर पहले तो स्पष्टतः प्रकट नहीं होता, परन्तु बाद में हलका सा प्रकट होता है।[247]

♦ रस और दोष :

रसों में अलग-अलग महाभूतों की प्रधानता के अनुसार कोई एक रस, एक दोष में वृद्धि करता है, तो दूसरे दोष का क्षय करता है। जैसेः[248]

रस	दोषों में वृद्धि	दोष का क्षय
मधुर	कफ	वायु, पित्त
लवण	कफ, पित्त	वायु
अम्ल	पित्त, कफ	वायु

---

246. तेषां षण्णां रसानां सोमगुणातिरेकान्मधुरो रसः,
पृथिव्यग्निभूयिष्ठत्वादम्लः, सलिलाग्निभूयिष्ठत्वाल्लवणः,
वाय्वग्निभूयिष्ठत्वात्कटुकः, वाय्वाकाशातिरिक्तत्वात्तिक्तः,
पवनपृथिवीव्यतिरेकात्कषाय इति।। च.सू. 26/40

क्ष्माऽम्भोऽग्निक्ष्माम्बुतेजः खवाय्वग्न्यनिलगोऽनिलैः।
द्वयोल्वणैः क्रमाद्भूतैर्मधुरादिरसोद्भवः।। अ.हृ.सू. 10/1

247. तत्र यो व्यक्तः स रसः,
यस्तु रसेनाभिभूतत्वान्न व्यज्यते व्यज्यते वा किंचिदन्ते सोऽनुरसः। यो.

रस	दोषों में वृद्धि	दोष का क्षय
कटु	पित्त, वायु	कफ
तिक्त	वायु	पित्त, कफ
कषाय	वायु	पित्त, कफ

रस और धातु :

छः रसों और धातुओं का भी आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। सामान्यतः -

मधुर, अम्ल, लवण रस	धातुओं के परिमाण में वृद्धि
कटु, तिक्त, कषाय रस	धातुओं के परिमाण में क्षय
तिक्त रस	मेदस्, मज्जा और लसीका का क्षय
अम्ल रस	शुक्र का क्षय

रस और मल :

मधुर, अम्ल, लवण रस	मल - पदार्थो के विसर्जन में सहायक (अतः कब्ज में उपयोगी)
कटु, तिक्त, कषाय रस	मल - पदार्थो को धारण करने में सहायक (अतः अतिसार में उपयोगी- कषाय रस विशेष रूप से)

♦ रसों के दो विभाग :

पाचन की दृष्टि से इन रसों को विदाही (हज़म होते समय खट्टी डकारें) तृषा या अत्यधिक प्यास, हृदय में जलन उत्पन्न करने वाले) और अविदाही (हजम होते समय जलन आदि उत्पन्न न करने वाले) तथा मूर्च्छा का शमन करने वाले) दो प्रकार का माना गया है।[249]

विदाही - कटु, अम्ल और लवण रस

अविदाही - मधुर, तिक्त और कषाय रस

---

248. स्वाद्वम्ललवणा वायुं, कषायस्वादुतिक्तकाः।
जयन्ति पित्तं, श्लेष्माणं कषायकटुतिक्तकाः।। च.सू. 1/66

249. कट्वम्ललवणा वैद्यैर्विदाहिन इति स्मृताः।
स्वादुतिक्तकषायाः स्युर्विदाहरहिता रसाः।। र.वै.भा.

♦ रसों की पहचान और गुण–कर्म :

♦ मधुर रस :

जो रस खाने पर मुख में चिपचिपापन उत्पन्न करता है, शरीर को पोषण प्रदान करता है,[250] इन्द्रियों को स्वच्छ करता है तथा चींटी आदि का प्रिय होता है, वह मीठा या मधुर रस होता है।

मधुर रस से युक्त पदार्थ (औषधि और आहार द्रव्य) जन्म से ही सात्म्य (अनुकूल) होते है। अतः यह रस रस से शुक्र तक सभी धातुओं की वृद्धि करके बलवान् बनाते है और आयु को बढ़ाते है। ये पदार्थ शक्ति बढ़ाते और रंग को निखारते है। इनके सेवन से पित्त और वायु दोष शान्त होते है, विष का प्रभाव कम होता है। ये शरीर को स्थिरता, लचीलापन, शक्ति और सजीवता प्रदान करते है, नाक, गला, मुख, जीभ तथा होंठों को चिकना और मुलायम बनाते है। मधुर रस वाले पदार्थ स्निग्ध, शीत और भारी होते है। केश, इन्द्रियों और ओज के लिए उत्तम है, दूध बढ़ाने वाले और सन्धान कारक है। अतः दुबले–पतले और क्षीण शरीर वाले व्यक्तियों, बालकों, वृद्धों और रोग आदि से कमजोर हुए लोगों के लिए विशेष रूप से लाभकारी है।

उपर्युक्त गुणों से युक्त होने पर भी मधुर रस वाले पदार्थो का अधिक मात्रा में सेवन करने से शरीर में कफ दोष बढ़ जाता है। परिणामतः मोटापा, आलस्य, अतिनिद्रा, शरीर में भारीपन, भूख न लगना, पाचन शक्ति की कमी, प्रमेह (मूत्र सम्बन्धी रोग मधुमेह आदि) मुख तथा गर्दन आदि में मांस का बढ़ना, मूत्रकृच्छ (मूत्र का रुक–रुक कर या कठिनाई से आना) खाँसी, जुकाम, जुकाम के साथ बुखार, मुँह का मीठा स्वाद, संवेदन (sensation) की कमी, आवाज़ में कमज़ोरी, गलगण्ड, गण्डमाला, गले में सूजन, गले में चिपचिपाहट, नेत्र–अभिष्यन्द (Conjuntivitis) जैसे रोग बहुत आसानी से आक्रमण कर देते हैं।[251] अतः मोटे, अधिक चर्बी वाले, मधुमेह से पीड़ित तथा पेट में कीड़े होने पर मधुर रस का सेवन कम से कम करना चाहिए।

---

250. तत्रमधुरोरसः शरीर सात्म्याद्रसरूधिर मांस मेंदोऽस्थिमज्जौजः, शुक्राभिवर्धन आयुष्यः षडिन्द्रियप्रसादनो बलवर्णकरः,
पित्तविषमारूतघ्नस्तृष्णादाहप्रशमनस्त्वच्यः केश्यःकण्ठयोबल्यः प्रीणनोजीवनस्तर्पणोबृंहणः स्थैर्यकरः क्षीणक्षनतसन्धानकरो,
घ्राणमुखकण्ठौष्ठजिह्वाप्रह्लादनी दाहमूर्च्छा प्रशमनः, षट्पदर्पिपीलिकानामिष्टतमः स्निग्धः शीतो गुरूश्च। — च.सू. 26/42
तत्रयः परितोषमुत्पादमति, प्रह्लादयति, तर्पयति, जीवयति, मुखोपलेपंजनयति, श्लेष्माणंचाभिवर्धयति समधुरः — सू.सू. 42/11

251. अम्लो रसो भक्तं रोचयति, अग्निदीपयति, देहं बृंहयति, ऊर्जयति, मनोबोधयति, इन्द्रियाणिदृढ़ीकरोति, बलंवर्धयति, वातमनुलोमयति।। — च.सू. 26/42
यो दन्तहर्षमुत्पादयति, मुखास्रांवजनयति, श्रद्धां चोत्पादयति सोऽम्लः।। — सू.सू. 42/11

द्रव्य : घी, सुवर्ण, गुड़, अखरोट, केला, नारियल, फालसा, शतावरी, काकोली, कटहल, बला, अतिबला, नागबला, मेदा, महामेदा, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, जीवक, महुआ, मुलहठी, विदारी, वंशलोचन, दूध, गम्भारी, ईख, गोखरू, मधु और द्राक्षा : ये सब मधुर द्रव्य कहलाते हैं।

अपवाद : पुराना शालि धान्य (चावल), पुराने जौ, मूँग, गेंहूँ, शहद मधुर रस वाले होने पर भी कफ को नहीं बढ़ाते।

♦ अम्ल रस :

जिस रस का सेवन करने से मुख से स्राव होता है, जो रोमांच तथा दन्तहर्ष करता है और आँखों एवं भौहों को संकुचित करता (सिकोड़ता) है, वह अम्ल रस होता है।

यह रस पदार्थो को स्वादिष्ट और रुचिकर बनाता है तथा भूख को बढ़ाता है। यह स्पर्श में शीतल होता है। इस रस वाले पदार्थ शरीर को पुष्ट और बलशाली बनाते हैं। मस्तिष्क को अधिक सक्रिय हृदय को पुष्ट और ज्ञानेन्द्रियों को शक्तिशाली बनाते एवं शरीर को ऊर्जा प्रदान करते हैं। इसका रस, भोजन को निगलने और उसे द्रवित (गीला) करने में सहायक होता है और गति बढ़ाकर अन्न को नीचे की ओर ले जाकर भी पाचन क्रिया को बढ़ाता है। अम्ल रस वाले पदार्थ ताज़गी प्रदान करने वाले, मूढ़वात, मूत्र तथा पुरीष (stool) के अनुलोमक (नीचे ले जाने वाले), लघु (पचने में हल्के) उष्ण तथा स्निग्ध होते हैं। कच्चे फलों में प्रायः अम्ल रस पाया जाता है।

अम्ल रस का अधिक सेवन करने से पित्तदोष में वृद्धि हो जाती है। इससे अधिक प्यास, रोमांच होना (horripilation) दाँतों में विकार (जैसे- दाँतों का खट्टा होना आदि), कफ का पिघलना, माँसपेशियों की टूट-फूट, दुर्बल शरीर वालों में सूजन, क्षीणता, कमज़ोरी आदि शरीर में शिथिलता, कण्डू, तिमिर (आँखों के सामने अन्धेरा), भ्रम (चक्कर), कण्डू (खुजली) त्वचा के रोग (विसर्प, विस्फोट आदि) चोट या कटने आदि से होने वाले घावों का पक जाना व उनमें पूय (pus) भर जाना, हड्टी का टूटना, गले, हृदय तथा छाती में जलन, ज्वर आदि लक्षण प्रकट होने लगते है।[252] अतः त्वचा रोग, आघात, श्वास, खाँसी, गला खराब व जोड़ों में पीड़ा आदि होने पर रोगी को अम्ल रस वाले पदार्थो का सेवन नहीं करना चाहिए। कृश (पतले) और दुर्बल एवं स्निग्ध (चिकने) अन्न-पान का सेवन न करने वालों को भी अम्ल पदार्थो का सेवन कम से कम करना चाहिए।

अपवाद : अनार या अनारदाना और आंवला अम्ल रस होते हुए भी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाते।

द्रव्य : आंवला, इमली, नींबू, अम्लवेंतस, अनार, चाँदी, तक्र, चुक्र, दही, आम, आम्रातक, कमरख, कैथ और करौंदा ये अम्ल द्रव्यों के अन्तर्गत आते हैं।

---

252. दन्तान् हर्षयति, तर्षयति, संमीलयत्यक्षिणी, संवेजयति लोमानि, कफं विलापयति, पित्तमभिवर्धयति, रक्तं दूषयति, मांस विदहति; कायं शिथिलीकरोति, क्षीणक्षतकृशदुर्बलानां श्वयथुमापादयति च.सू. 26/42

♦ लवण रस :

जो रस सेवन करने पर मुख से लार टपकाता है तथा गले और कपोल में जलन पैदा करता है, वह लवण रस कहलाता है।

लवण रस वाले पदार्थ वातानुलोमक (वायु की गति नीचे की ओर करने वाले), चिपचिपाहट पैदा करने वाले, तीक्ष्ण, पाचक, रुचि उत्पन्न करने वाले छेदक और भेदक होते है। ये अंगों की अकड़ाहट, शरीर के स्रोतों की रुकावट, जमी हुई चर्बी और मल पदार्थो के अधिक संचय को दूर करते है।[253] लवण रस वाले पदार्थ न बहुत अधिक चिकने, न अधिक गर्म होते है और न अधिक भारी होते हैं। यह रस अन्य रसों के प्रभाव को कम कर देता है।

अधिक मात्रा में सेवन करने पर यह रस पित्त दोष के साथ रक्त को भी प्रकुपित करता है। इससे अधिक प्यास, अधिक गर्मी लगना, जलन, मूर्च्छा, रस रक्त आदि धातुओं का क्षय, कुष्ठ या अन्य चर्म रोग से पीड़ित स्थान की त्वचा का गलना- सड़ना मुखपाक, नेत्र पाक, सूजन, त्वचा के रंग में विकार, शरीर के अंगों से रक्तस्राव, दाँतों का हिलना, विषैले लक्षण, पौरुष में कमी, गंजापन, बालों का सफेद होना झुर्रियां पड़ना, विसर्प (Erysipelas –एक प्रकार का चर्म रोग), दाद, वातरक्त (gout), अम्लपित्त (hyper acidity), घाव में वृद्धि, बल और ओज का नाश आदि विकार उत्पन्न होते हैं।[254] लवण आँखों के लिए अपथ्य बताया गया है। यही कारण है कि किसी प्रकार के त्वचा के रोगी और उच्च रक्तचाप होने पर नमक का परहेज़ बताया जाता है।

द्रव्य : सेंधा नमक, सौर्वचल नमक, कृष्ण, बिड, सामुद्र और औद्भिद नमक, रोमक, पांशुज, सीसा और क्षार-ये लवण रस वाले द्रव्य हैं।

अपवाद : सेंधा नमक (सैंधव) उपरोक्त हानियाँ उत्पन्न नहीं करता।

♦ कटु रस :

सेवन करने पर यह रस मुख में चिमचिमाहट करता हुआ जीभ के अगले भाग को उत्तेजित करता है, आँख, नाक और मुख से स्राव करता है और कपोलों को जलाता है।

गुण—कर्म :

कटु रस वाले पदार्थ मुंह को स्वच्छ रखते है, शरीर में भोजन के आचूषण (absorption) में सहायक, भूख और पाचन शक्ति को बढ़ाते है। ये आँख, कान आदि ज्ञानेन्द्रियों को निर्मल बना कर ठीक प्रकार से कार्य करने योग्य बनाते है। इनके सेवन से नाक व आँखों से मल-पदार्थो

---

253. पाचनः क्लेदनो दीपनश्च्यावनश्छेदनो भेदनस्तीक्ष्णः सरोविकास्यधः स्रंस्यवकाशकरो वातहरः स्तम्भबन्धसंघातविधमनः सर्वरसप्रत्यनीकभूतः — च.सू. 26/42
लवणः सशोधनः पाचनो विश्लेषणा क्लेदनः शैथिल्यकृदुष्णः सर्वरसप्रत्यनीको मार्गविशोधनः सर्वशरीरावयवमार्दवकरश्चेति।। — सु.सू. 42/14

254. स एवं गुणोऽप्येक एवात्यर्थमुपयुज्यमानः पित्तं कोपयति, रक्तं वर्धयति, तर्षयति, मूर्च्छयति, तापयीत, दारयति, कृष्णाति मांसानि, प्रगालयति कुष्ठानि — च.सू. 26/42
स एवं गुणोऽप्येक एवात्यर्थमासेव्यमानो गात्र कण्डूकोठशोफवैवर्ण्य पुंस्त्वोपघातेन्द्रयोपतापमुखाक्षिपाकरक्त पित्तवातशोणिताम्लिका प्रभृतिनापादयति। — सु.सू. 42/14

का स्राव तथा स्रोतों से चिपचिपे मल-पदार्थों का निकास ठीक प्रकार से होता है। इस प्रकार ये पदार्थ अन्न, रस व रक्त के स्रोतों को खोलने वाले होते हैं। इस रस के सेवन से मोटापा, शीतपित्त (उदर्द), आँतों की शिथिलता, नेत्राभिष्यन्द (Conjunctivitis), खुजली, घाव, पेट के कीड़े, संन्धियों की जकड़ाहट, गले के रोग, कुष्ठ, उदर्द, अलसक, आदि रोग दूर होते हैं। यह स्नेह, मेद, मांस और क्लेद को सुखाता है। कफ को शान्त करता है तथा जमे हुए रक्त का संचार करता है। ये पदार्थ भोजन को स्वादिष्ट बनाते हैं।[255]

अधिक मात्रा में सेवन करने पर ये पदार्थ मूर्च्छा, घबराहट, तालू और होंठों में सूखापन, थकावट, श्वास, क्षीणता (कमज़ोरी), चक्कर, पौरुष, बल और वीर्य का क्षय करते हैं। इन पदार्थों में वायु और अग्नि महाभूत की अधिकता के कारण अधिक सेवन से टाँगों, हाथों व पीठ में जलन, ताप, फटने सा दर्द, चुभन और घाव जैसी पीड़ा कम्पन आदि विकार भी उत्पन्न होते हैं।[256]

द्रव्य : हींग, मरिच, विडङ्ग, पंचकोल (पिप्पली, पिप्पलामूल, चव्य, चित्रक और शुण्ठी) और हरीतक वर्ग, सभी प्रकार के पित्त, मूत्र और भिलावा कटु रस वाले द्रव्य है।

अपवाद : सोंठ, पिप्पली और लहसुन कटुरस के अन्य पदार्थों के समान हानिकारक नहीं होते।

♦ तिक्त रस :

यह रस मुख से लिसलिसेपन को हटाता है और जीभ को जड़ बनाता है।

गुण–कर्म :

तिक्त रस स्वयं बुरे स्वाद वाला होते हुए भी अन्य पदार्थों को स्वादिष्ट और रुचिकर बनाता है, इससे भोजन में रुचि बढ़ती है। तिक्त रस वाले पदार्थ विषैले प्रभाव, पेट के कीड़ों, कुष्ठ, खुजली, मूर्च्छा, जलन, प्यास, ज्वर एवं अन्य त्वचा के भयंकर रोगों को दूर करते हैं। ये वायु का अनुलोमन (नीचे की ओर गति) करते हैं शरीर में शुष्कता लाते हैं। अतः शरीर की नमी, चर्बी, मोटापा, मज्जा, लसीका (lymph), पूय, पसीना, मूत्र तथा पुरीष को सुखाते हैं, गले और यकृत को शुद्ध करते है और कार्य करने में समर्थ बनाते हैं। ज्वर और आम से उत्पन्न विषों का शीघ्र शोधन करता है। यह रस माँ के दूध को शुद्ध करता है एवं पित्त कफ दोषों को शान्त करता है। लघु, रूक्ष, शीत और स्निग्ध

---

255. कटुको रसो वक्त्रं शोधयति, अग्निं दीपयति, भुक्तंशोषयति, घ्राणमास्रावयति, चक्षु विरेचयति, स्फुटीकरोतीन्द्रियाणि, रोचयत्यशनं, कण्डूर्विनाशयति, व्रणानवसादयति, क्रिमीन् हिनस्ति
च.सू. 26/42
कटुकोदीपन:पाचनोरोचन:शोधन: स्थौल्यालस्यकफकृमिविषकुष्ठकण्डूप्रशमन:, सन्धिबन्धविच्छेदनोऽवसादन: स्तन्यशुक्रमेदसामुपहन्ता चेति।।
सु.सू. 42/15

256. पुंस्त्वमुपहन्ति, रसवीर्यप्रभावान्मोहयति, ग्लापयति, कण्ठंपरिदहति शरीरतापमुपजनयति, बलंक्षिणोति, तृष्णांजनयति।।
च.सू. 26/42
स एवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमुपसेव्यमानो भ्रममदगलताल्वोष्ठशोषदाहसंतापबलविघातकम्पतोदभेदकृत् करचरणापार्श्वपृष्ठप्रभृतिषु च वातशूलानापादयति।।
सु.सू. 42/15

है तथा मेधा के लिए उत्तम है।[257]

अधिक मात्रा में सेवन करने से ये पदार्थ शरीर में रस (plasma), रक्त, वसा, मज्जा तथा शुक्र की मात्रा को कम कर देते हैं। इनसे स्रोतों में खुरदरापन और मुँह में शुष्कता, शक्ति में कमी, दुर्बलता, थकावट, चक्कर, बेहोशी, वातज रोग जैसे- मन्यास्तम्भ, अर्दित, शिरःशूल, भेद, छेद, तोद आदि उत्पन्न होते हैं।[258]

द्रव्य : पटोल, जयन्ती, सुगन्धबाला, खस, चन्दन, चिरायता, नीम, गिलोय, धमासा, महा पंचमूल, छोटी और बड़ी कटेरी, इन्द्रायण, अतीस और वच- ये सब तिक्त रस वाले पदार्थ हैं।

अपवाद : गिलोय, पटोल तिक्त रस वाले होने पर भी हानिकारक नहीं होते।

♦ कषाय–रस :

यह रस जिह्वा को जड़ बनाता है और कण्ठ एवं स्रोतों को अवरुद्ध करता है।

गुण–कर्म :

यह रस पित्त कफ दोषों का नाशक, रक्तपित्त (अंगों से रक्त स्राव) को शान्त करने वाला, व्रण (घाव) को शुद्ध करने और भरने वाला, सन्धानकर्ता (हड्डियों को जोड़ने वाला), शोषण (मेद द्रव धातुओं और मूत्र आदि को सुखाने वाला), स्तम्भन (अतिसार आदि में पुरीष को रोकने वाला) तथा लेखन (उभरे मांस को काटने वाला) गुणों से युक्त है। अतः कषाय रस वाले पदार्थों के सेवन से क़ब्ज़ (मल आदि के विसर्जन में रुकावट) व शरीर में कठोरता आती है। ये पदार्थ त्वचा को बहुत अधिक निर्मल करते हैं व पीडक (व्रण या फोड़े आदि) रुग्ण भाग पर दबाव डालने वाले हैं। शरीर के तरल अंश को सोख लेते हैं। यह रस रूक्ष, शीत और भारी होता है।[259]

कषाय रस वाले पदार्थ का अधिक मात्रा में सेवन करने से मुँह का सूख जाना, हृदय में पीड़ा, पेट में अफारा, बोलने में रुकावट, स्रोतों की सिकुड़न व रुकावट, रंग को काला करना, पौरुष का नाश, अधिक प्यास, शरीर में कमज़ोरी, थकावट, कठोरता, अधोवायु, मूत्र, पुरीष आदि मल-पदार्थ तथा शुक्र के निकास में बाधा आदि रोग उत्पन्न होते हैं। भारी होने से इन पदार्थों का पाचन धीरे-धीरे होता है। चूंकि कषाय रस वायु को प्रकुपित करता है, अतः इसके अधिक सेवन से पक्षाघात, लकवा, उद्वेष्टन

---

257. तिक्तो रसः स्वयमरोचिष्णुरप्यरोचकघ्नोविषघ्नः कृमिघ्नो मूर्च्छादाहकण्डूकुष्ठतृष्णाप्रशमन स्त्वङ्मांसयोः स्थिरीकरणो।। — च.सू. 26/42

तिक्तश्छेदनो रोचनोदीपनःशोधनः कण्डूकोठतृष्णामूर्च्छाज्वरप्रशमनः स्तन्यशोधनो विण्मूत्रक्लेदमेदोवसापूयोपशोषणश्चेति। — सु.सू. 42/16

258. रौक्ष्यात् खरविशदस्वभावाच्च रसरूधिरमांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राण्युच्छोषशयति गात्रमन्यास्तम्भाक्षेपकार्दितशिरःशूलभ्रमतोदभेदच्छेदास्यवैरस्यान्यापादयति। — च.सू. 26/42, सु.सू. 42/16

259. कषायो रसः संशमनः संग्राही संन्धानकरः पीडनोरोपणः शोषणः स्तम्भनः श्लेष्मरक्तपित्तप्रशमनः शरीरक्लेदस्योपयोक्ता रूक्षः शीतोऽलघुश्च।। — च.सू. 26/43

कषायः संग्राहकोरोपणः स्तम्भनः शोधनोलेखनः शोषणः पीडनः क्लेदोपशोषणश्चेति।। — सु.सू. 42/16

(जकड़ाहट), आक्षेप (convulsion) आदि रोग हो सकते है।[260]

द्रव्य : हरड़, बहेड़ा, शिरीष, खैर, मधु, कदम्ब, गूलर, कच्ची खांड़, कमल-ककड़ी, पद्म, कमलादि गण के द्रव्य, मुक्ता (मोती), प्रवाल, अञ्जन और गेरू कषाय रस वाले द्रव्य हैं।

अपवाद : कषाय रस युक्त होने पर भी हरड़ अन्य कषाय द्रव्यों के समान शीतल और स्तम्भक (मल आदि को रोकने वाली) नही होती।

सभी आहार-द्रव्यों के गुणों का आधार ये रस माने गये हैं। औषधि द्रव्यों में वीर्य (potency) की प्रधानता होती है। वीर्य का निर्णय भी रस के आधार पर किया जाता है। उदाहरणतः मधुर रस वाले द्रव्यों का वीर्य शीत तथा अम्ल या कटु रस वाले द्रव्यों का उष्ण माना जाता है।

2. गुण (Attributes)

द्रव्यों में कुछ गुण पाये जाते है, जिनके माध्यम से ये शरीर पर अपनी क्रिया करते है। आयुर्वेदिक ग्रन्थों में विभिन्न द्रव्यों में विद्यमान इन गुणों का उल्लेख किया गया है। ये गुण मुख्यतः 20 है जो 10 जोड़ों में है। प्रत्येक का एक विपरीत गुण है।[261] ये निम्नलिखित है:

1. गुरु (heavy)	11. सान्द्र या ठोस (solid)
2. लघु (light)	12. द्रव (liquid)
3. मन्द (dull)	13. मृदु या कोमल (soft)
4. तीक्ष्ण (pungent)	14. कठिन या कठोर (hard)
5. स्निग्ध (oily, greasy)	15. सूक्ष्म (subtle)
6. रूक्ष (dry)	16. स्थूल (bulky)
7. शीत (cold)	17. स्थिर (stable)
8. उष्ण (hot)	18. सर या चल (tremulous)
9. श्लक्ष्ण (gummy)	19. विशद या अचिपचिपा (non-mucilaginous)
10. खर या खुरदरा (rough)	20. पिच्छिल या चिपचिपा (mucilaginous)

---

260. आस्यंशोषयति, हृदयंपीडमति, उदरमाध्मापयति, वाचंनिगृह्णाति, स्रोतांस्यवबध्नाति — च.सू. 26/43
हृत्पीडाऽस्यशोषोदराध्मानवाक्यग्रहमन्यास्तम्भगात्रस्फुरणचुमुचुमायनाकुञ्चनाक्षेपण प्रभृतीञ्जनयति॥ — सु.सू. 42/17

261. गुरूलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षमन्दतीक्ष्णस्थिरसरमृदुकठिनविशद पिच्छिलश्लक्ष्णखरस्थूलसूक्ष्मसान्द्र द्रवाः विंशतिः।

ये सब गुण द्रव्यों में भौतिक दृष्टि से नहीं, अपितु औषधीय दृष्टि से पाये जाते हैं। अलग-अलग द्रव्यों का सेवन करने के पश्चात् शरीर पर जो प्रभाव पड़ता है उसके आधार पर ही इन गुणों का निश्चय किया जाता है।[262] जैसे-यदि कोई पदार्थ हाथ में उठाने से भारी या गुरु लगता है, तो उस आधार पर हम उसे गुरु नहीं कह सकते। उसका गुरुत्व या लघुत्व तो पाचन में लगने वाले समय पर निर्भर करता है। जो पदार्थ देर से हजम होते हैं वे गुरु और जो शीघ्र हजम होते हैं, वे लघु कहलाते हैं। इसी प्रकार राई स्पर्श में शीतल होने पर भी गुण की दृष्टि से उष्ण है क्योंकि यह रस और रक्त के ताप को बढ़ाती है।

द्रव्यों के ये गुण उनमें विद्यमान प्रमुख महाभूतों के आधार पर पाये जाते हैं। जैसे - जिस द्रव्य में पृथ्वी महाभूत की प्रधानता होती है, वह गुरु गुण वाला होता है, जबकि जिस द्रव्य में आकाश महाभूत की प्रधानता होती है, वह लघु गुण वाला होता। पहले भी बताया जा चुका है कि द्रव्यों में विद्यमान रस और गुण के आधार पर उसका शरीर पर क्या कर्म या प्रभाव होगा इसका अनुमान लगाया जाता है। केवल रस के आधार पर द्रव्य के गुणों का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

3. वीर्य (Potency)

किसी भी औषधि में अनेक प्रकार के गुण पाये जाते हैं परन्तु उन गुणों में से जो सबसे अधिक शक्तिशाली और सक्रिय होता है अर्थात् जो रोग के उपचार में मुख्य रूप से सहायक होता है, वह वीर्य कहलाता है।[263] वीर्य रस से अधिक शक्तिशाली है अतः यह रस के प्रभाव को गौण कर देता है। इस वीर्य के आधार पर ही औषध-द्रव्यों को मुख्यतः दो भागों में बाँटा गया है- उष्ण और शीत। इसे ही लोक व्यवहार में गर्म या ठण्डी तासीर वाला कहा जाता है। रोगी की प्रकृति के अनुसार उष्ण या शीत वीर्य वाली औषधियों का चयन किया जाता है। इसी वीर्य के कारण ही ये औषधि-द्रव्य रोग का नाश करते है और स्वास्थ्य को बनाये रखते है। औषधि-द्रव्य का सेवन करने पर पाचन-क्रिया के दौरान जब उस पर चयापचय क्रिया होती है तो उस द्रव्य की पांचभौतिक और रासायनिक संरचना भी बदल जाती है। इससे दोषों और धातुओं पर प्रतिक्रिया होती है। इसी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप मधुर, तिक्त और कषाय रस वाले द्रव्य, शीतल प्रभाव उत्पन्न करते हैं अतः शीतवीर्य कहलाते हैं तथा उससे अम्ल, लवण और कटु रस वाले द्रव्य उष्ण (गर्म) प्रभाव उत्पन्न करते हैं अतः उष्णवीर्य कहलाते हैं।

शरीर पर प्रभाव

इनमें शीतवीर्य[264] द्रव्य शरीर पर शीतल प्रभाव डालते है और आर्द्रता (गीलापन) बढ़ाते है। इन द्रव्यों के सेवन से आयु, धातु, (विशेषतः शुक्र धातु)

सु.सू. 46/513

262. कर्मभिस्त्वनुमीयन्ते नानाद्रव्याश्रया:गुणा:। च.सू. 26/65

263. वीर्यं तु क्रियते येन या क्रिया। सु.सू. 41/11

264. शीतस्य ह्लादनविष्यन्दन स्थरीकरणप्रसादनक्लेदनजीवनानि।। अ.स.सू. 17/16
शीतं ह्लादनस्तम्भनजीवनरक्तपित्तप्रसादनादीनि।।

और जीवनीय शक्ति बढ़ती है अतः शीत वीर्य एक टॉनिक का कार्य करता है। यह पित्त का शमन करता है तथा वायु और कफ को कुपित करता है।

उष्णवीर्य[265] द्रव्य शरीर में गर्म प्रभाव डालते है। ये पाचन शक्ति, स्वेद, प्यास और कृशता (दुर्बलता) को बढ़ाते है। उष्ण वीर्य कफ और वायु दोष का शमन करता है तथा पित्त को कुपित करता है।

कुछ विद्वान इन शीत और उष्ण वीर्य के अतिरिक्त छः अन्य वीर्य भी मानते है, जिनकी सहायता से किसी औषधि-द्रव्य में गुणों का निश्चय किया जाता है। ये 6 अन्य वीर्य है 1. स्निग्ध 2. रूक्ष 3. गुरु 4. लघु 5. मन्द और 6. तीक्ष्ण इस प्रकार शीत और उष्ण मिलाकर वीर्यो की कुल संख्या 8 मानी गई है[266] परन्तु मुख्यतया शीत और उष्ण वीर्य ही मान्य है।

जब ये दोनों वीर्य भी अधिक शक्तिशाली नहीं होते तो इन्हें वीर्य न कह कर गुण कहा जाता है। इस आधार पर कुछ औषधि-द्रव्यों में वीर्य नहीं भी पाया जाता। जिस तरह आहार द्रव्यों में रस की प्रधानता होती है उसी प्रकार औषधि द्रव्यों में वीर्य की प्रधानता होती है।

4. विपाक (After Taste)

जठराग्नि के संयोग से द्रव्यों के पाचन के बाद जो अन्य रस उत्पन्न होता है, उसे विपाक कहा जाता है।[267] इस प्रकार की अन्तिम स्थिति में किसी द्रव्य में जो रस उत्पन्न होता है, वही विपाक है। पाचन के दौरान जठरान्त्र-प्रणाली में खाद्य-पदार्थ में अनेक प्रकार के पाचक रस मिलते है। जिससे उसमें अनेक प्रकार के परिवर्तन आते हैं। भोजन अपने पाचन क्रिया के समय तीन अवस्थाओं से गुजरता है- प्रथम अवस्था में रस का स्वाद मधुर, द्वितीय अवस्था में अम्ल, तथा तीसरी अवस्था में कटु रस वाला होता है।

पाचन की अन्तिम अवस्था में द्रव्य का सार और किट्टभाग (मल भाग) अलग-अलग हो जाते है। मल भाग के अलग हो जाने पर सार भाग केवल रस के रूप में शेष रह जाता है। यह द्रव्य का नया ही रूप होता है और उसका रस भी नया उत्पन्न होता है, यही विपाक है।

विपाक के भेद

रस के आधार पर विपाक के तीन भेद है- मधुर, अम्ल और कटु। मधुर और लवण रसों का विपाक प्रायः मधुर, अम्ल रस का प्रायः अम्ल और कटु, तिक्त एवं कषाय रसों का विपाक प्रायः कटु होता है।[268] कभी-कभी इस नियम का अपवाद भी मिलता है। जैसे-

---

265. तत्रकर्माण्यष्युष्णस्य दहनपाचनमूर्च्छनस्वेदनवमनविरेचनानि उष्णस्निग्धौ वातघ्नौ।। सु.सू. 41/11

266. मृदुतीक्ष्णगुरूलघुस्निग्धरूक्षोष्णशीतलम्।
वीर्यमष्टविधंकेचित्।। च.सू. 26/64

267. ''जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम्।
रसानां परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः।। वा.सू. 9
रसानां परिणामान्ते जरणनिष्ठाकाले,
यद्रसान्तरं रसविशेषः उदेति उत्पद्यते स विपाकः।। अ.द.

द्रव्य	रस	विपाक
तैल	मधुर	कटु
सौवर्चल	लवण	कटु
आंवला	अम्ल	मधुर
शुण्ठी, पिप्पली	कटु	मधुर
हरीतकी	कषाय	मधुर
पटोल	तिक्त	मधुर

विपाक का प्रभाव :

विपाक का प्रभाव मधुर आदि रसों के अनुसार ही होता है।

मधुर विपाक : गुरु, मल-मूत्र का साफ करने वाला तथा कफ और शुक्र का पोषक होता है।[269]

अम्ल विपाक : लघु, मल-मूत्र को साफ करने वाला शुक्र नाशक और पित्तवर्धक होता है।[270]

5. प्रभाव (Specific Action)

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि औषधि -द्रव्य रस, वीर्य या विपाक के आधार पर शरीर में कार्य करते है परन्तु कुछ द्रव्य इन रस आदि में से किसी के भी अनुरूप शरीर में कार्य नहीं करते, अर्थात् उनकी शरीर पर सर्वथा अलग प्रकार की प्रक्रिया होती है जिससे विशेष रोग शान्त होता है या बढ़ जाता है। जिस तत्व के आधार पर यह विशेष प्रकार की क्रिया होती है, वह तत्व ही प्रभाव कहलाता है।[271] दूसरे शब्दों में, दो द्रव्यों में रस, वीर्य, विपाक की समानता होने पर जो विशेष (भिन्न) कार्य प्रकट होता है, वही प्रभाव माना जाता है। प्रभाव के कारण ही रस आदि तत्व एक जैसे होने पर भी, एक औषधि किसी रोग में लाभदायक होती है, तो दूसरी उसी रोग में हानिकारक सिद्ध होती है। उदाहरण के लिए, दन्ती (जमालगोटा) और चित्रक, दोनों का रस और विपाक कटु है तथा वीर्य-उष्ण है फिर भी दन्ती विरेचक है, चित्रक नही। मुलेठी और द्राक्षा-दोनों के रस, वीर्य, विपाक एक समान है, परन्तु मुलेठी वामक (उलटी कराने वाली) है, पर द्राक्षा बिल्कुल नहीं। इसी प्रकार घी और दूध के रस, वीर्य और विपाक भी

---

268. कटुतिक्तकषायाणां विपाकः प्रायशः कटुः। — च.सू. 26/58
अम्लोऽम्लं पच्यते स्वादुर्मधुरं लवणस्तथ।। — च.सू. 26/61

269. मधुरः सृष्टविण्मूत्रो विपाकः कफशुक्रलः।। — च.सू. 26/62

270. पित्तकृत् सृष्टविण्मूत्रः पाकोऽम्लः शुक्रनाशनः।

271. रसवीर्य विपाकानां सामान्यं यत्र लक्ष्यते। — च.सू. 26/67
विशेषः कर्मणां चैव प्रभावस्तस्य स स्मृतः
रसादिसाम्ये यत् कर्म विशिष्टं तत् प्रभावजम्।। — अ.हृ. सूत्र 9/26
दन्ती रसाधैस्तुल्याऽपि चित्रकस्यविरेचनो।।

समान है परन्तु घी अग्निदीपक (पाचक-शक्ति बढ़ाने वाला) है, जबकि दूध नहीं।

कुछ औषधियों को बाँधने या पहनने मात्र से ज्वर, अनिद्रा आदि रोग ठीक हो जाते हैं। जैसे- सहदेवी की जड़ को सिर पर बाँधने से ज्वर ठीक हो जाता है। ताबीज, मणि आदि पहनने, मन्त्र-जाप एवं अन्य धार्मिक कृत्यों को करने से जो रोग आदि दूर होते है उसका कारण भी उनमें विद्यमान प्रभाव ही है।

प्रभाव के आधार पर द्रव्यों को तीन प्रकार से जाना जा सकता है-

1. **शमन द्रव्य :** जो वायु आदि दोषों को शान्त करते है।
2. **कोपन द्रव्य :** जो द्रव्य वायु आदि दोषों और धातुओं को कुपित करते है।
3. **स्वास्थ्यहितकारी द्रव्य :** जो द्रव्य स्वास्थ्य को बनाये रखने में सहायक होते है।

इस प्रकार द्रव्यों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए रस आदि तत्वों को जानना आवश्यक हो जाता है क्योंकि ये द्रव्य रस, वीर्य, विपाक या प्रभाव के माध्यम से ही शरीर पर क्रिया करते है। इनमें जो-जो तत्व अधिक बलशाली होता है, वह दूसरे तत्वों के प्रभाव को दबा देता है। इस दृष्टि से रस की अपेक्षा विपाक अधिक बलशाली है क्योंकि वह रस को हटा देता है, रस और विपाक की अपेक्षा वीर्य अधिक बलशाली है क्योंकि वीर्य इन दोनों के गुणों को नष्ट कर देता है। इस क्रम से द्रव्यों में रस सबसे कम बलशाली है, तो प्रभाव सबसे अधिक बलशाली :

रस - विपाक - वीर्य - प्रभाव

6. कर्म के आधार पर द्रव्य के प्रकार

इन रस, विपाक, वीर्य और प्रभाव के माध्यम से द्रव्य शरीर में विभिन्न प्रकार से प्रभाव डालते है, जिसे कर्म कहा जाता है। ये कर्म अनेक प्रकार के है। उसके अनुसार द्रव्य भी निम्नलिखित अनेक प्रकार के है :

---

272. अपक्वं पित्तश्लेष्मान्नं बलादूर्ध्वं नयेत्तु यत्।
वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा।। — भा.प्र.पूर्व.मिश्र. 6/219

273. विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत्।
रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा।। — शार्ङ्धर 4/7

274. दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद् द्रवशोषकम्।
ग्राहि तच्च यथा शुण्ठी जीरकं गजपिप्पली।। — शार्ङ्धर पू. 4/12

275. धातून्मलान्वा देहस्यविशोष्योल्लेखयेच्च यत् लेखनं।। — शार्ङ्धर पू. 4/11

276. पचत्यामं न वह्निं च कुर्याद्यत्तद्धि पाचनम्। — शार्ङ्धर पू. 4/2

277. न शोधयति न द्वेष्टि समान्दोषांस्तथोद्धतान्।
समीकरोति विषमाञ्शमनं तद्यथामृता।। — शार्ङ्धर पू. 4/3

278. कृत्वा पाकंमलानांयद्भित्वा बन्धमधोनयेत्।
तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी।। — शार्ङ्धर पू. 4/4

वमन द्रव्य	ये उलटी (वमन) लाने में सहायक है तथा अपक्व कफ एवं पित्त को मुख के मार्ग से बाहर निकालते है।[272] जैसे - मदन फल (मैनफल)।
विरेचन द्रव्य	ये द्रव्य पुरीष में वृद्धि करके, पक्व और अपक्व, दोनों प्रकार के मलों को नीचे की ओर ले जाकर गुदामार्ग से बाहर निकाल देते है।[273] जैसे- त्रिवृत्, कर्षिका फल।
संग्राही द्रव्य	मल बांधने वाले या कब्जकारक द्रव्य;[274] जैसे - जीरा।
बृंहण द्रव्य	पुष्टि प्रदान करने वाले; जैसे - नया गुग्गुलु (गूगल)
लेखन द्रव्य	धातु और मलों का शोषण करके उन्हें शरीर से बाहर निकालने वाला द्रव्य; जैसे - पुराना गुग्गुलु।[275]
पाचन द्रव्य	आम या अपक्व रस का पाचन करने वाले (ये पाचक-अग्नि को तीव्र नहीं करते); जैसे - नागकेशर।[276]
शमन द्रव्य	केवल कुपित दोषों को शान्त करने वाले, जैसे - गिलोय।[277]
अनुलोमन द्रव्य	पेट में स्थित वायु को नीचे की ओर ले जाने वाले, जैसे - हरड़।[278]
स्रंसन द्रव्य	पके और बँधे हुए (ठोस) मल को नीचे की ओर ले जाकर गुदामार्ग से बाहर निकालने वाले, जैसे - अमलतास।[279]
भेदन द्रव्य	बँधे (ठोस) और द्रवरूप, दोनों प्रकार के मलों को गुदामार्ग से बाहर निकालने वाले, जैसे - कुटकी।[280]
छेदन द्रव्य	जमे हुए एकत्रित दोषों को बलपूर्वक जड़ से उखाड़ने वाले, जैसे - जल और शहद।[281]
ग्राही द्रव्य	दीपन और पाचन तथा क़ब्ज़ कारक, जैसे - जीरा।[282]
स्तम्भन द्रव्य	आसानी से पचने तथा कषाय रस होने से किसी भी प्रकार के स्राव को रोकने वाले, जैसे - वत्सक।[282]

---

279. पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम्।
नयत्यधः स्रंसनं तद्यथा स्यातकृतमालकः।। — शार्ङ्धर पू. 4/5

280. मलादिकमबद्धं यद्बद्धं वा पिण्डितं मलैः।
भित्वाऽधः पातयति यद्भेदनं कटुकीयथा।। — शार्ङ्धर पू. 4/6

281. श्लिष्टान्कफादिकान् दोषानुन्मूलयति यद्बलात्।
छेदनं तद्यथा क्षारा मारिचानि शिलाजतु।। — शार्ङ्धर पू. 4/10

282. रौक्ष्याच्छैत्यात्कषायत्वाल्लघुपाकाच्च यद्भवेत्।
वातकृत्स्तम्भनं तस्याद्यथा वत्सकटुण्टुकौ।। — शार्ङ्धर पू. 4/13

रसायन द्रव्य	वृद्धावस्था के विकारों और रोगों को नष्ट करके दीर्घायु प्रदान करने वाले जैसे - आंवला, गुग्गुल।[283]
वाजीकर द्रव्य	काम वासना और काम सुख को बढ़ाने वाले, जैसे - दूध, उड़द, शाल्मली तालमखाना।[284]
शुक्रल द्रव्य	जो शुक्र की मात्रा में वृद्धि करते है, जैसे - अश्वगन्धा, मूसली, कौंच शतावरी।[285]
सूक्ष्म द्रव्य	जो द्रव्य पतले और सूक्ष्म स्रोतों और छिद्रों द्वारा भी शरीर में प्रविष्ट हो सकते है, जैसे - सेंधा नमक, शहद।[286]
व्यवायी द्रव्य	पाचन से पहले ही सारे शरीर में फैल जाने वाले, जैसे - अहिफेन (अफीम)।
विकाशी द्रव्य	सन्धियों में स्थित स्नायुओं और हाथ-पैरों को शिथिल करने वाले जैसे - सुपारी।[288]
प्रमाथी द्रव्य	अपने वीर्य के प्रभाव से स्रोतों में स्थित दोषों को दूर करने वाले जैसे - काली मिर्च।[289]
अभिष्यन्दी द्रव्य	अपनी गुरुता और स्निग्धता के कारण रसवह स्रोतों में रुकावट पैदा करने वाले तथा शरीर में भारीपन लाने वाले, जैसे - दही[290]।

---

283. रसायनं च तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम्।
यथा अमृतारूदन्ती च गुग्गुलश्च हरीतकी।। — शार्ङ्गधर पू. 4/14

284. यस्माद द्रव्याद्भवेस्त्रीषु हर्षो वाजीकरं च तत्। — शार्ङ्गधर पू. 4/15

285. यस्माच्छुक्रस्य वृद्धि स्याच्छुक्रलं हि तदुच्यते।
यथाऽश्वगन्ध मुशली शर्करा च शतावरी।। — शार्ङ्गधर पू. 4/16

286. देहस्य सूक्ष्मच्छिद्रेषु विशेद्यत्सूक्ष्ममुच्यते।
तद्यथा सैन्धवं क्षौद्रं निम्बतैलं रूबूद्भवम्।। — शार्ङ्गधर पू. 4/19

287. पूर्व व्याप्याखिलं कायं ततः पाकं च गच्छति।
व्यवायि तद्यथा भङ्गा फेनं चाहिसमुद्भवम्।। — शार्ङ्गधर पू. 4/20

288. सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान्यत्करोति विकाशि तत्।
विश्लेष्यौजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुकोद्रवौ।। — शार्ङ्गधर पू. 4/21

289. निजवीर्येण यद् द्रव्यं स्रोतोभ्यो दोष संचयम्।
निरस्यति प्रमाथि स्यात्तद्यथा मरिचं वचा।। — शार्ङ्गधर पू. 4/24

290. पैच्छिल्याद् गौरवाद् द्रव्यं रूद्धवा रसवहाःशिराः।
धत्ते यद्गौरवं तत्स्यादभिष्यन्दि यथा दधि।। — शार्ङ्गधर पू. 4/25

स्वस्थवृत्त
(दिनचर्या और ऋतुचर्या)

आयुर्वेद का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा और रोगों से बचाव करना है।[291] स्वास्थ्य का बना रहना और बिगड़ना, शरीर में त्रिदोष की स्थिति पर निर्भर करता है।[292] पहले बताया जा चुका है कि दिन के अलग-अलग समय तथा वर्ष की अलग-अलग ऋतुओं में अलग-अलग दोषों का संचय, प्रकोप और शमन स्वाभाविक रूप से होता रहता है। इन दोषों की साम्यावस्था बनाये रखने के लिए ही आयुर्वेद में दिन और रात्रि तथा विभिन्न ऋतुओं के आचरण (आहार-विहार) का उल्लेख किया गया है, जिसे स्वस्थवृत्त के नाम से जाना जाता है।[293] इस स्वस्थवृत्त को दिनचर्या (दिन और रात में सेवन करने योग्य और न सेवन करने योग्य आहार-विहार) और ऋतुचर्या-इन दो भागों में बाँटा गया है। इनके अनुसार आचरण करने से जहाँ स्वास्थ्य की रक्षा होती है वहीं रोगों के आक्रमण से भी बचा जा सकता है। इनका संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है:

1. दिनचर्या

♦ जागरण[294]

स्वस्थ व्यक्ति को ब्राह्म-मूहर्त में (सूर्योदय से दो घण्टे पूर्व) उठ जाना चाहिए। यह समय शुभ माना जाता है, क्योंकि वातावरण में सब जगह शान्ति व स्वच्छता और प्रसन्नता छाई रहती है। जागते ही अपने इष्ट देव का स्मरण करके प्रार्थना करनी चाहिए। इससे मानसिक शान्ति और प्रसन्नता बनी रहती है चूँकि इस समय बुद्धि, मन आदि सब ताजे होते हैं तथा थकान मिटी होती है अतः जो याद किया जाता है, वह स्मरण रहता है। इस समय उठने पर शौच, आदि नित्यकर्म करने का पर्याप्त समय भी मिल जाता है, अतः रोग नहीं होते और आयु की रक्षा होती

---

291. "प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च ।" — च.सू. 30/26
"इह खल्वायुर्वेद प्रयोजनं-व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः, स्वस्थस्य रक्षणं च।" — सु.सू. 1/13

292. "दोष धातुमल मूलं हि शरीरम्।" — सु.सू. 15/3

293. "मानवो येन विधिना स्वस्थस्तिष्ठति सर्वदा।
तमेव कारयेद्वैधो यतः स्वास्थ्यं सदेप्सितम्।।
दिनचर्यां निशाचयर्यामृतुचर्यां यथोदिताम्।
आरचन् पुरूषः स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथा।।" — भा.प्र.पू. 5/12-13

294. "ब्रह्मे मुहूर्त उत्तिष्ठेज्जीर्णाऽजीर्ण निरूपयन्।" — अ.स. सूत्र 3/3

है। बिस्तर छोड़ने से पूर्व ही यदि दिन के सारे कार्यक्रमों पर विचार कर लिया जाए, तो कार्य ठीक समय पर और सफलतापूर्वक हो जाते है।

♦ मुख धोना

बिस्तर छोड़ने के तुरन्त बाद, सभी ऋतुओं में स्वच्छ जल से मुख धोना चाहिए। इससे आँख, नाक, मुख तथा चेहरे पर जमी हुई गन्दगी साफ हो जाती है तथा सुस्ती दूर होकर ताज़गी आती है। शीत ऋतु में गुनगुने जल से मुख धोया जा सकता है।[295]

♦ खाली पेट जल पीना

प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन और हर ऋतु में मुख धोने के पश्चात खाली पेट कम से कम एक गिलास और अधिक से अधिक चार गिलास जल अवश्य पीना चाहिए। यह जल रात को ही एक बर्तन में (विशेषकर ताँबे के बर्तन में) भरकर रख देना चाहिए और प्रात: इसी ठण्डे जल का पान करना लाभप्रद रहता है। इससे मल तथा मूत्र का त्याग ठीक प्रकार से होता है जिससे शरीर से अनेक प्रकार के विषैले तत्व बाहर निकलते है और अनेक रोगों से छुटकारा मिलता है। इसे ही उष:पान कहा जाता है।

कुछ लोग इस जल के स्थान पर चाय (Bed tea) का सेवन करते है। उनके कथनानुसार, इससे शौच क्रिया सुविधापूर्वक हो जाती है परन्तु इसका प्रभाव जल से अलग प्रकार से होता है। यह चाय आँतों पर दबाव डाल कर उन्हें उत्तेजित करती है। इसके परिणामस्वरूप मलत्याग की प्रवृति उत्पन्न होती है। वस्तुत: गर्म एवं उत्तेजक होने के कारण चाय आँतो में तीव्र उत्तेजना उत्पन्न कर देती है और यह उत्तेजक प्रभाव कुछ दिनों के पश्चात् समाप्त होने लगता है इस प्रकार, व्यक्ति पुन: कब्ज का शिकार हो जाता है। इसके अतिरिक्त, चाय और कॉफी में पाया जाने वाला 'कैफीन' (Caffeine) नामक तत्व आमाशय तथा आँतों की ग्रन्थियों पर भी बुरा प्रभाव डालता है परन्तु ठण्डे जल के सेवन से किसी प्रकार का कुप्रभाव नहीं होता। हाँ, खाँसी, जुकाम एवं गला खराब होने पर इस जल को गुनगुना करके लेना चाहिए।

♦ शौच क्रिया[296]

इसके पश्चात् शौचक्रिया के लिए जाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को प्रात: ही नियमित रूप से इसकी आदत बनानी चाहिए। आज के इस तनावपूर्ण और व्यस्त जीवन में बहुत से लोगों को नियमित रूप से तथा समय पर मल के वेग का अनुभव नही होता। इसके अनेक कारण है,

---

295. "स्पृष्ट्वा धातून् मलानश्रु वसाकेशनखांश्च्युतान्।
स्नात्वा भोक्तुमना भुक्त्वा सुप्त्वा क्षुत्वा सुरार्चने।।"
रथ्यामाक्रम्य चाचामेदुपविष्ट उदङ्.मुख:।
प्राङ्मुखो वा विविक्तस्थो न बहिर्जानु नान्यहक्।
अजल्पन्नुत्तरासङ्ग स्वच्छैरक्ष्ष्टमूलगै:।।
नोद्धतैर्नानतो नोर्ध्वं नाग्निपक्वैर्न पूतिभि:।
न फेनबुद्बुद्क्षारैर्नैकहस्तार्पितैर्जलै:।।
नार्द्रैकपाणिर्नामेध्यहस्तपादो न शब्दवत्।

अ.स.सू. 3/9-12

जैसे-रात्रि में खाये गये भोजन का पाचन न होना, पूरी नींद न ले पाना, बहुत अधिक चिन्ताग्रस्त, क्रोधी, संवेदनशील और असन्तुलित स्वभाव का पाया जाना आदि। इन सब कारणों से अथवा वायुकारक भोजन (जैसे-भारी दालें, तले हुए पदार्थ) के सेवन से रात को आँतो में वायु जमा हो जाती है। इससे मलत्याग की गति में रुकावट पैदा होती है। परिणामतः थोड़ा मलत्याग करने पर लगता है कि पेट पूरी तरह साफ हो गया है परन्तु कुछ समय बाद फिर शौच क्रिया की आवश्यकता महसूस होती है। कुछ लोगों को तो पेट साफ करने के लिए प्रातःकाल ही तीन-चार बार जाना पड़ता है।

दफ्तर या दुकान आदि के लिए जाने की जल्दी के कारण भी व्यक्ति मलत्याग की क्रिया की उपेक्षा करता है और पेट पूरी तरह साफ नहीं हो पाता। परिणामतः भूख समाप्त हो जाती है तथा गैस, अपच, सिरदर्द, उदासी, ग्लानि, बेचैनी, थकान, सुस्ती, नींद न आना, आदि शिकायतें उत्पन्न हो जाती हैं। अधिक वायु इकट्ठी होने से हृदय पर दबाव पड़ता है और दिल की धड़कन बढ़ जाती है। अधिक समय तक क़ब्ज़ रहने से जुकाम, दमा, बवासीर, जोड़ों का दर्द तथा गठिया जैसे भयंकर रोग भी आक्रमण कर सकते है अतः प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रतिदिन नियमित रूप से मलत्याग करना आवश्यक होता है। व्यक्ति को प्रतिदिन नियमित रूप से मलत्याग की क्रिया के लिए जाना चाहिए। कुछ सावधानियाँ बरतनी चाहिए, जैसे-वायुकारक पदार्थ (भारी दालें-राजमा, चने, उड़द व चने की दाल, तले हुए पदार्थ) कम से कम मात्रा में लेने चाहिए। पत्ते वाली सब्जियाँ (पालक, मेथी, बथुआ) घीया, तोरी, जिमीकन्द, पपीता तथा अन्य रेशेदार पदार्थ अधिक मात्रा में सेवन करने चाहिए। एक से अधिक बार मल का वेग उपस्थित होने पर टालना नहीं चाहिए, मलत्याग के लिए अवश्य जाना चाहिए।

♦ दातून या दांत साफ करना

शौच क्रिया के पश्चात् दाँतों को साफ करना चाहिए।

1. कटु, तिक्त या कषाय रस वाले दातून लेने चाहिए क्योंकि यह विकार नाशक होती है। इसके विपरीत मधुर, अम्ल या लवण रस वाली दातून कफ को बढ़ाएगी उसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। इस दृष्टि से करवीर, करंज, आक, मालती, असन, नीम तथा इसी प्रकार के गुण और रस वाले वृक्षों की टहनी को प्रयोग में लाया जा सकता है।[297]
2. इसकी लम्बाई 6'' के लगभग होनी चाहिए जिससे पकड़ने में सुविधा हो और दाँत से चीर कर जीभ भी साफ की जा सके। दातुन की मोटाई छोटी अंगुली के समान होनी चाहिए बहुत पतली या मोटी की कूँची ठीक नही बनती। मोटी दातुन से मसूड़े छिलने का भय भी रहता है। दातुन का अगला भाग मुलायम

---

296. जातवेगः समुत्सृजेत्।।
उदङ्.मुखो मूत्रशकृद्दक्षिणाभिमुखो निशि।
वाचं नियम्य प्रयतः संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः।।
प्रवर्तयेत् प्रचलितं न तु यत्नादुदीरयेत्।
अ.स.सू. 3/3-4

होना चाहिए, सूखा या कड़ा नही, जिससे से दाँतों से चबा कर ब्रुश बनाया जा सकता है। यह सीधी होनी चाहिए, टेढ़ी-मेढ़ी नहीं।[298]

3. इस दातुन को एक-एक दाँत को नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे को रगड़ना चाहिए। इससे दाँत भी अच्छी तरह साफ होते है और मसूड़ों को किसी प्रकार की हानि भी नहीं होती। दातून के साथ चूर्ण या मंजन का भी प्रयोग किया जा सकता है।[299]

इस प्रकार, दाँत और जीभ साफ करने से मुँह की दुर्गन्ध और जिह्वा दाँत और मुँह की मैल दूर होती है। इससे दाँत साफ और मज़बूत होते हैं और विभिन्न खाद्य-पदार्थो के स्वाद की अनुभूति भी ठीक प्रकार से होती है।[300]

आजकल दाँतों के लिए बने बनाये ब्रुश बाजार से मिलते है जिनका प्रयोग दाँत साफ करने के लिए किया जाता है। इसके साथ विभिन्न प्रकार के टूथपेस्ट प्रयोग में लाये जाते है।

दाँत साफ करने के बाद जीभ को साफ करना चाहिए क्योंकि जीभ के मूल में बहुत सी मैल जम जाती है, जिससे दुर्गन्ध आने लगती है और जीभ का स्वाद भी ठीक नही रहता।[301] उपर्युक्त दातुन को पीछे से चीर कर जीभ साफ की जा सकती है। इसके अतिरिक्त लकड़ी, सुवर्ण, चाँदी, ताँबे, पीतल या स्टील की धातु से भी जीभी (Tongue scraper) बनाई जाती है।[302] (जो आजकल बाज़ार में उपलब्ध है) ये जीभी कोमल, चिकनी और बीच में से घुमावदार होनी चाहिए। किनारे तीखे और नुकीले नहीं होने चाहिए, अन्यथा जीभ में घाव होने का भय रहता है।

---

297. "वटासनार्कखदिरकरञ्जकरवीरजम्।।
सर्जारिमेदायपार्गमालती ककुभोद्भवम्।
कषाय तिक्तकटुकं मूलमन्यदपीदृशम।।
विज्ञातवृक्षं क्षुण्णाग्रमृज्वग्रन्थि सुभूमिजम्।" — अ.स.सू. 3/13-14-15
"निम्बश्च तिक्तके श्रेष्ठ: कषाये खदिरस्तथा।
मधूको मधुरे श्रेष्ठ: करञ्ज: कटुके तथा।।" — सुश्रुत.चि. 24/6
"करञ्जकरवीरार्कमालतीककुभासना:।
शस्यन्ते दन्तपवने ये चाप्येवंविधा द्रुमा:।।" — च.सू. 5/73

298. "तत्रादौ दन्तपवनं द्वादशाङ्.गुलमायतम्।
कनिष्ठिकापरीणाहमृज्वग्रन्थितम् व्रणम्।।" — सु.चि. 24/4
"कनीन्यग्रसमस्थौल्यं सुकूर्च्चं द्वादशाङ्.गुलम्।" — अ.स.सू. 3/15

299. "दन्तान् पूर्वमधो घर्षेत् प्रात: सिम्चेच्च लोचने।
तोयपूर्णमुखो ग्रीष्मशरदो: शीतवारिणा।।" — अ.स.सू. 3/23

300. "निहन्ति गन्धं वैरस्यं जिह्वादन्तास्यजं मलम्।
निष्कृष्य रूचिमाधत्ते सद्यो दन्तविशोधनम्।।" — च.सू. 5/72
"तथास्य मलवैरस्यगन्धाजिह्वाऽऽस्यदन्तजा:।
रूचिवैशद्यलघुता न भवन्ति भवन्ति च।।" — अ.स.सू. 3/18

301. "लिखेदनुसुखं जिह्वां जिह्वानिर्लेखनेन च।" — अ.स.सू. 3/17

अपच, श्वास, ज्वर, लकवा, तृष्णा (अधिक प्यास) मुखपाक और हृदय, नेत्र, सिर और कान के रोग होने पर दातुन करने की मनाही की गई है। इन अवस्थाओं में दातुन करने से रोग बढ़ने की आशंका रहती है।[303]

♦ गण्डूष या गरारे करना[304]

यदि यात्रा या अन्य किसी कारणवश दाँत साफ करने की सुविधा न हो, तो पानी से कुल्ले व गरारे भी किये जा सकते है। इससे भी कुछ हद तक जीभ और दाँतो में जमा हुआ मैल एवं मुँह की दुर्गन्धि दूर हो जाते है। इस अतिरिक्त मुँह का चिपचिपापन तथा गले और मुख में जमा कफ भी निकल जाता है। सामान्यता दाँत साफ करके मुख में तिल या सरसों का तेल दाँये-बाँये घुमाना (जिसे कवलग्रह कहते हैं) चाहिए। इससे दाँत और मसूड़े मज़बूत होते हैं, दाँत दर्द नहीं होता, ठण्डा-गर्म पदार्थ दाँतों में नहीं लगता, खटास से दन्तहर्ष नहीं होता, सख्त से सख्त पदार्थ भी चबाया जा सकता है, आवाज़ ऊँची और गम्भीर होती है, चेहरे पर कोमलता आती है, मुंह का स्वाद अच्छा रहता है और भोजन में रुचि बढ़ती है। नियमित रूप से कुल्ला, गरारे और कवल करने से गले का सूखना और होंठों के फटने की शिकायत भी दूर होती है।

कटु रस वाले द्रव्यों के साथ जल उबाल कर

---

302. "जिह्वानिर्लेखनं रौप्यं सौवर्णं वार्क्षमेव च।
तन्मलापहरं शस्तं मृदुश्लक्ष्णम् दशाङ्.गुलम्।।" सु.चि. 24/13
"सुवर्णरूप्यताम्राणि त्रपुरीतिमयानि च।
जिह्वानिर्लेखनानि स्युरतीक्ष्णान्यनृजूनि च।।
जिह्वामूलगतं यच्च मलमुच्छ्वासरोधि च।
दौर्गन्ध्यं भजते तेन तस्माज्जिह्वां विनिर्लिखेत्।।" च.सू. 5/74-75

303. "नाद्यादजीर्णवमथुश्वासकासज्वरार्दिती।
तृष्णास्यपाकहृन्नेत्रशिरःकर्णामयी च तत्।।" अ.स.सू. 3/19
"न खादेद् गलताल्वोष्ठ जिह्वारोगसमुद्भवे।
अथास्य पाके श्वासे च कासहिक्कावमीषु च।।
दुर्बलोऽजीर्णभक्तश्च मूर्च्छार्त्तो मदपीडितः।
शिरोरूजार्त्तस्तृषितः श्रान्तः, पाकक्लमान्वितम्।।
अर्दिती कर्णशूली च दन्तरोगी च मानवः।" सु.चि. 24/10-12

304. "मुखवैरस्यदौर्गन्ध्य शोफजाडयहरं सुखम्।
दन्तदार्ढ्यकरं रूच्यं स्नेहगण्डूषधारणम्।।" स.चि. 24/14
"हन्वोर्बलं स्वरबलं वदनोपचयः परः। स्यात्परं च रसज्ञानमन्ने च रूचिरूत्तमा।।"
"न चास्य कण्ठशोषः स्यान्नौष्ठयोः स्फुटनाद्भयम्। न च दन्ताः क्षयं यान्ति दृढमूला भवन्ति च।।"
"न शूल्यन्ते न चाम्लेन हृष्यन्ते भक्षयन्ति च।
परानपि खरान् भक्ष्यांस्तैलगण्डूषधारणात्।।" च.सू. 5/78-80
"ओष्ठस्फुटनपारूष्यमुखशोषद्विजामयाः।
न स्युः स्वरोपघाताश्च स्नेहगण्डूषधारणात्।।" अ.स.सू. 3/29-30

व छान कर साधारण गर्म पानी से गरारे करने से मुख साफ हो जाता है और दुर्गन्ध दूर हो जाती है।

धूप में बैठ कर गण्डूष (गरारे) और कवल करने चाहिए। मुख में द्रव को भर कर (बिना पिये) मुख को तब तक कुछ ऊँचा रखना चाहिए जब तक मुख कफ से न भर जाये या नासिका और आँखों से कफ न बहने लगे। मुख में द्रव की इतनी मात्रा भरी जाय कि हिलाया-डुलाया न जा सके, यह गण्डूष कहलाता है और इतनी मात्रा भरी जाय कि हिलाया-डुलाया जा सके, वह कवल कहलाता है। कवल से शिरोरोग, कर्णरोग, जी-मचलाना, तन्द्रा (सुस्ती), अरुचि, पीनस(पुराना जुकाम, आदि) और मन्या रोग ठीक होते हैं।

♦ सिर पर तेल लगाना

नित्यप्रति सिर पर तेल लगाना चाहिए। नारियल या तिल का तेल लगाना चाहिए। इससे बालों का गिरना, सफेद या भूरा होना, गंजापन, सिरदर्द, सिर की त्वचा का फटना और अन्य वायु के रोग नष्ट होता है। सिर, नेत्र, कान आदि इन्द्रियाँ बलशाली बनती है, बाल लम्बे, काले और मज़बूत होते है, तथा चेहरे की त्वचा में चमक आती है। तिल का तेल सिर पर लगाने से नींद अच्छी और गहरी आती है। इसके बाद कंघी करने से बाल सुन्दर तथा स्वच्छ होते है।[305]

♦ तेल मालिश (अभ्यङ्ग)

जिस प्रकार घड़े, सूखी चमड़ी एवं रथ और मोटर-गाड़ियों के पास की धुरी में तेल लगाने या डालने से वे मुलायम और मज़बूत होते है, उसी प्रकार शरीर पर तेल की मालिश करने से शरीर शक्तिशाली और त्वचा मुलायम होती है। शरीर पर वायु से होने वाले रोग आक्रमण नहीं कर पाते। त्वचा वायु का स्थान है। त्वचा में रोमकूपों की अधिकता होती है, जिनमें पित्त की गर्मी होती है। इस गर्मी से त्वचा पर लगाया गया तेल शरीर में लीन हो जाता है और वायु शान्त होती है। इसके अतिरिक्त बुढ़ापा, थकान और त्वचा की झुर्रियाँ, खुरदरापन और शुष्कता नष्ट होते है, दृष्टि निर्मल, शरीर पुष्ट, त्वचा मुलायम, कोमल और आकर्षक बनती है। शरीर की दुर्गन्ध, मैल, खुजली, पसीने की बदबू, भारीपन और तन्द्रा भी दूर होती है।[306]

तेल की मालिश लोम की दिशा की ओर करनी चाहिए। इस मालिश को धीरे-धीरे करना चाहिए, बहुत जोर लगाने की आवश्यकता नहीं होती।

---

305. रथाक्षचर्मघाट्वद् भवन्त्यभ्यङ्गतो गुणाः।
स्पर्शनेऽभ्यधिको वायुः स्पर्शनं च त्वगाश्रयम्।।
त्वच्यश्च परमभ्यङ्गो यस्मात् तं शीलयेदतः।
शिरः श्रवण पादेषु तं विशेषेण शीलयेत्।।
स केश्यः शीलितो मूर्ध्नि कपालेन्द्रियतर्पणः। — अ.स.सू. 3/57-59

"स्नेहाभ्यङ्गाद्यथा कुम्भश्चचर्म स्नेहविमर्दनात्।
भवत्युपाङ्गादक्षश्च दृढ़ क्लेशसहो यथा।।
तथा शरीरमभ्यङ्गाद्दृढं सुत्वक् च जायते।
प्रशान्तमारूताबाधं क्लेशव्यायामसंसहम्।।" — च.सू. 5/85-86

"अभ्यंगो मार्दवकरः कफवातनिरोधनः।
धातूनां पुष्टिजननो मृजावर्णबलप्रद।।" — सु.चि. 24/30

धूप मे अभ्यंग करने से तैल शरीर में जल्दी चला जाता है।

♦ कान में तेल डालना (कर्णपूरण)

कान में प्रतिदिन तेल डालना चाहिए। इससे ऊँचा सुनना, बहरापन, कान के रोग (वायु से होने वाले), मन्यास्तम्भ (Torticollis) तथा हनुस्तम्भ जैसे रोग नहीं होते। स्वस्थ अवस्था में कान में तेल डाल कर उसे सौ मात्रा तक धारण करना चाहिए। यदि कान में दर्द हो, तो तेल डालने के बाद कर्णमूल के स्थान को मलते हुए तब तक तेल रहने देना चाहिए जब तक दर्द समाप्त न हो जाए।[307]

♦ पैरों में तेल मालिश (पादाभ्यंग)

पैरों में प्रतिदिन तेल लगाने से भी बहुत लाभ होता है। इससे पैरों का खुरदरापन, रूखापन, शिथिलता, थकावट, सुन्न होना, पैरों का फटना, पैरों की रक्तवाहिकाओं और स्नायुओं की सिकुड़न, गृध्रसी (सियाटिका) तथा अनेक वातरोग ठीक होते है। आँखों की दृष्टि भी तेज़ होती है। यही कारण है कि पहले पण्डित आदि लोग इसे धर्म का अंग मान कर शौच के पश्चात्, मूत्रत्याग के बाद, भोजन से पहले, कितनी ही बार पैरों को धो कर पौछते थे और प्रातःकाल स्नान से पहले तेल मलते थे।[308]

---

306. "नित्यं स्नेहार्द्रशिरसः शिरःशूलं न जायते।।
न खालित्यं न पालित्यं न केशाः प्रपतन्ति च।
बलं शिरः कपालानां विशेषेणाभिवर्धते।।
दृढ़मूलाश्च दीर्घाश्च कृष्णाः केशा भवन्ति च।
इन्द्रियाणि प्रसीदन्ति सुत्वग्भवति चाननम्।।
निद्रालाभः सुखं च स्यान्मूर्ध्नि तैलनिषेवणात्।" — च.सू. 5/81-83
"केशप्रसाधिनी केश्या रजोजन्तुमलापहा।" — स्वस्थवृत्त सम्मुच्चय
"शिरोगतांस्तथा रोगाञ्छिरोभ्यङ्गोऽपकर्षति।
केशनां मार्दवं दैर्ध्यं बहुत्वं स्निग्धकृष्णताम्।।
करोति शिरसस्तृप्तिं सुत्वक्कमपि चाननम्।
सन्तर्पणं चेन्द्रियाणां शिरसः प्रतिपूरणम्।।" — सु.चि. 24/25-26

307. "न कर्णरोगा वातोत्था न मन्याहनुसङ्ग्रहः।
नोच्चैः श्रुतिर्न बाधिर्यं स्यान्नित्यं कर्णतर्पणात्।।" — च.सू. 5/84
"हनुमन्याशिरःकर्णशूलघ्नं कर्णपूरणम्।" — सु.चि. 24/29

308. खरत्वं स्तब्धता रौक्ष्यं श्रमः सुप्तिश्चपादयोः।
सद्य एवोपशाम्यन्ति पादाभ्यङ्ग.निषेवणात्।।
जायते सौकुमार्यं च बलं स्थैर्यं च पादयोः।
दृष्टि प्रसादं लभते मारूतश्चोपशाम्यति।।
न च स्याद्गृध्रसीवातः पादयोः स्फुटनं न च।
न सिरास्नायुसंकोचः पादाभ्यंगेन् पादयोः।। — च.सू. 5/90-92
"निद्राकरो देहसुखश्चक्षुष्यः श्रमसुप्तिनुत्।
पादात्वङ्मृदुकारी च पादाभ्यङ्गः सदा हितः।।" — सु.चि. 24/70

♦ नस्य कर्म या नाक में तेल डालना

नाक को सिर का द्वार माना गया है अतः नाक में डाली गई औषधि सिर के एक-एक अणु तक पहुँच जाती है। सामान्यतः वर्षा, हेमन्त और बसन्त ऋतुओं में, जब आकाश में बादल न छाये हों, तो नाक में तेल की कुछ बूँदें डालनी चाहिए।[309] प्रातः सिर पर तेल आदि लगाने के बाद, मलत्याग, दन्तधावन आदि नित्यकर्म करने के पश्चात् यह क्रिया करनी चाहिए। सिर को कुर्सी आदि के सहारे पीछे टिका कर और थोड़ा-सा नीचे की और झुका कर ड्रापर से तेल (गर्म पानी में रखकर या वाष्प में गर्म करके) की कुछ बूँदें नाक में बारी-2 से एक-2 नासा में डालनी चाहिए और साँस ऊपर की ओर खींचना चाहिए। एक नासा में डालते समय दूसरे को बन्द करना चाहिए। इससे जो कफ या स्राव निकले उसे बाहर थूक देना चाहिए। नस्य के बाद सौ तक गिनती करने तक पीठ के बल लेटे रहना चाहिए, सोना नहीं चाहिए।[310] इस नस्य से गर्दन के ऊपर के सभी रोग दूर होते हैं। इसके लिए अणु तैल का प्रयोग करना चाहिए। वैसे बादाम रोगन और गाय का घी भी प्रयोग में लाया जा सकता है, जो अणु तैल की अपेक्षा कुछ कम प्रभावकारी है। मन्यास्तम्भ (Torticollis), लकवा, सिरदर्द, आधासीसी का दर्द, नाक में सूजन, सिर का काँपना, हनु-स्तम्भ (Lock-Jaw) आदि रोग भी ठीक होते हैं। बुढ़ापे में भी आयु का प्रभाव सिर आदि अंगों पर नहीं पड़ता तथा बाल सफेद नहीं होते।[311]

स्वस्थावस्था में नस्य का काल प्रायः शरद् और वसन्त ऋतु में (जिस समय अधिक सर्दी या गर्मी न हो) वह माना गया है अर्थात् शीतकाल में दोपहर के समय, ग्रीष्मकाल में प्रातः-सायं और वर्षाकाल में धूप (दोपहर) के समय देना चाहिए। इसी प्रकार, दोषों के अनुसार भी नस्य कर्म के काल को विभाजित किया गया है जैसे - कफ

---

309. "वर्षे वर्षेऽणुतैलं च कालेषु त्रिषु ना चरेत्।
प्रावृट्शरद्वसन्तेषु गतमेघे नभस्तले।।" — च.सू. 5/56

310. "देशे वातरजोमुक्ते कृतदन्तनिघर्षणम्।।
विशुद्धं धूमपानेन स्विन्नमालगलं तथा।
उत्तानशायिनं किंचित् प्रलम्बशिरसं नरम्।।
आस्तीर्णहस्तपादं च वस्त्राच्छादितलोचनम्।।
समुन्नमितनासाऽग्रं वैद्यो नस्येन् योजयेत्।।
कोष्णमच्छिन्नधारं च हेमतारादिशुक्तिभिः।
शुक्त्या वा यत्र युक्त्या वा प्लोतैर्वा नस्यमाचरेत्।।
नस्येष्वासिच्यमानेषु शिरो नैव प्रकम्पयेत्।
न कुप्येन्न प्रभाषेत् नोच्छिदेन्न हसेत् तथा।।" — शा.उ.ख. 8/47-51
पञ्चच सप्त दशैव स्युर्मात्रा नस्यस्य धारणे।।
उपविश्याथ निष्ठोवेन्नासावक्त्रगतं द्रवम्।
वामदक्षिणपार्श्वाभ्यां निष्ठीवेत् सम्मुखे न हि।।
नस्ये नीते मनस्तापं रजः क्रोधं च सन्त्यजेत्।
शयीत् निद्रां त्यक्त्वा च प्रोत्तानो वाक्शतं नरः।। — शा.उ.ख. 8/54-56

होने पर प्रातःकाल, पित्त होने पर दोपहर और वायु की अधिकता होने पर सायंकाल। वायु से होने वाले शिरो रोग, हिचकी, अपतानक, मन्यास्तम्भ और स्वरभ्रंश (गला बैठना) में प्रतिदिन सायं और प्रातः नस्य देना चाहिए।[312]

♦ व्यायाम (Exercise)

वह क्रिया जो इच्छापूर्वक की जाती है तथा जिससे शरीर में थकान का अनुभव होता है, व्यायाम कहलाती है। यह व्यायाम शरीर में स्थिरता और बल प्रदान करता है।[313] व्यायाम नित्यप्रति, सब ऋतुओं में तथा अपनी शक्ति के अनसुार करना चाहिए। हेमन्त, शिशिर और बसन्त ऋतु में अपनी आधी शक्ति तक (अर्थात् जब माथे पर या बगल में पसीना अनुभव हो) तथा ग्रीष्म, वर्षा और शरत् में इससे भी कम करना चाहिए क्योंकि ग्रीष्म, वर्षा, आदि में वायु का संचय और प्रकोप होता है, अतः कम करने का विधान है।[314] व्यायाम करने के बाद सारे शरीर को धीरे-धीरे मलना चाहिए, जिससे शरीर को कष्ट न पहुँचे। इससे व्यायाम से उत्पन्न थकावट दूर हो जाती है।

इस प्रकार, ठीक मात्रा और ठीक ढंग से व्यायाम करने से मांस-पेशियाँ दृढ़ बनती है। चर्बी घट जाने से पेट और छाती अलग-अलग दिखाई देते

---

311. न तस्य चक्षुर्न घ्राणं न श्रोत्रमुपहन्यते।
न स्युःश्वेता न कपिलाः केशाः शमश्रूणि वा पुनः।।
न च केशाः प्रमुच्यन्ते वर्धन्ते च विशेषतः।
मन्यास्तम्भः शिरः शूलमर्दितम् हनुसंग्रहः।।
पीनसार्धावभेदौ च शिरःकम्पश्च शाम्यति।
सिराः शिरः कपालानां सन्धयः स्नायुकण्डराः।।
नावनप्रीणिताश्चास्य लभन्तेऽप्यधिकं बलं।
मुखं प्रसन्नोपचितं स्वरः स्निग्धः स्थिरो महान्।।
सर्वेन्द्रियाणां वैमल्यं बलं भवति चाधिकम्।
न चास्य रोगाः सहसा प्रभवन्त्यूर्ध्वजत्रुजाः।।
जीर्यतश्चोत्तमाङ्गे.षु जरा न लभते बलम्। — च.सू. 5/58-63
घनोन्नतप्रसन्नत्वक्स्कन्धग्रीवास्यवक्षसः।
सुगन्धिवदनाः स्निधनिःस्वना विमलेन्द्रियाः।। — अ.स.सू. 3/28-29
निर्मलीपलितव्यङ्गा भवेयुर्नस्य शीलिनः।

312. "कफपित्तानिलध्वंसे पूर्वमध्यापराह्णके।
दिने तु गृह्यते नस्यं रात्रावप्युत्कटे गदे।।" — शा.उ. 8/3

313. "शरीरायासजननं कर्म व्यायाम उच्यते।" — अ.स.सू. 3/62
"शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्था बलवर्धिनी।
देह व्यायामसंङ्ख्याता मात्रया तां समाचरेत्।।" — च.सू. 7/31

314. "अर्धशक्त्या निषेव्यस्तु बलिभिः स्निग्धभोजिभिः।
शीतकाले बसन्ते च मन्दमेव ततोऽन्यदा।।" — अ.स.सू. 3/64
"प्राक्श्रमाद् व्यायामवर्जी च स्यात्।" — च.सू. 8/18

है।[315] व्यायाम को मालिश करने के बाद करना चाहिए, जिससे तेल शरीर में भली प्रकार प्रवेश कर जाता है। शरीर से पसीना निकलता है, जिससे हल्कापन और स्फूर्ति आती है। कार्य करने की क्षमता, स्थिरता व कष्ट सहन करने की शक्ति और पाचन-शक्ति बढ़ती है। चर्बी नष्ट होती है। कुपित हुए दोष, विशेषत: कफ-दोष शान्त होते है।[316]

शक्ति से अधिक व्यायाम करने से प्यास, प्रतमक श्वास (गम्भीर प्रकार का दमा), खाँसी, ज्वर, रक्तपित्त (शरीर के अंग से रक्तस्राव), क्लम (ज्ञानेन्द्रियों की कार्य करने में असमर्थता), श्रम (कर्मेन्द्रियों की कार्य करने में असमर्थता) तथा वमन आदि जैसे रोग उत्पन्न होना।[317] अति व्यायाम करने से व्यक्ति उसी प्रकार नाश को प्राप्त होता है, जिस प्रकार हाथी को खींचने से शेर नष्ट हो जाता है।[318]

♦ व्यायाम न करने योग्य व्यक्ति

वात-पित्त रोगी, बालक (16 वर्ष से कम), वृद्ध (70 वर्ष के बाद) अजीर्ण, भूख और प्यास से पीड़ित रोगियों को व्यायाम नहीं करना चाहिए। जो लोग अधिक यात्रा या पैदल चलने, बोझ उठाने या अधिक सम्भोग करने में दुर्बल हो गये हों, जो क्रोध, शोक, भय और थकान से ग्रस्त हों, उन्हें भी व्यायाम से दूर रहना चाहिए[319] क्योंकि व्यायाम से वायु और पित्त की वृद्धि होती है और उपरोक्त अवस्थाओं में प्राय: वायु या पित्त पहले से ही बढ़े रहते है बालक भी चंचल होने से प्राय: कुछ न कुछ करते रहते है, अत: उनके लिए भी कुश्ती आदि अधिक ज़ोर के व्यायाम की मनाही है।

♦ उबटन (उद्वर्तन)

चूर्ण या कल्क (Paste) से शरीर की मालिश करना उबटन कहा जाता है। स्नान से पहले इसका प्रयोग भी लाभकारी है। इससे क्लम का नाश, अंगों की स्थिरता और त्वचा की निर्मलता होती है। इससे रोम खुलते है, अत: अंग स्थिर होते है।[320] उबटन के लिए-सरसों का चूर्ण+दूध+बेसन+तेल, या दही की मलाई+तेल प्रयोग में लाये जा सकते है।

---

315. "लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदस: क्षय:।
विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामदुपजायते।।" अ.स.सू. 62-63

316. "स्वेदागम: श्वासवृद्धिर्गात्रणां लाघवं तथा।
हृद्याद्युपरोधश्च इति व्यायामलक्षणम्।।" च.सू. 7/33(1)
योगेन्द्रनाथसेन संभतोयम् पाठ:

317. "श्रम: क्लम: क्षयस्तृष्णा रक्तपित्तं प्रतामक:।
अतिव्यायामत: कासोज्वरश्छर्दिश्चजायते।।" च.सू. 7/33

318. "व्यायामहास्यभाष्याध्वग्राम्यधर्मप्रजागरान्।
नोचितानपि सेवेत बुद्धिमानतिमात्रया।।"
"एतानेवंविधांश्चान्यान् योऽतिमात्रं निषेवते।
गजं सिंह इवाकर्षन् सहसा स विनश्यति।।" च.सू. 7/34-35

319. "वातपित्तामयी बालोवृद्धोऽजीर्णी च तं त्यजेत्।" अ.स.सू. 3/63

♦ मुख पर लेप

स्नान से पूर्व मुख पर लेप लगाना चाहिए। इससे चेहरे पर झुर्रिया, झाईयाँ, काले दाग, आदि नष्ट होते है मुख की त्वचा कोमल और निर्मल होती है, रंग में भी निखार आता है तथा नेत्र दृष्टि तेज़ होती है। इसके लिए ठण्डा लेप लगाना चाहिए अन्यथा वात या कफ होने पर गर्म लेप लगाना चाहिए। लेप लगाने पर जब वह गीला ही हो, तो हटा लेना चाहिए, सूख जाने पर गीला करके हटाना चाहिए। सूखे लेप को हटाने से कान्ति (चमक) नष्ट होती है। लेप करके दिन में सोना, बोलना, अग्नि या धूप, चिन्ता और क्रोध करना-इनका निषेध होता है। इससे चेहरे की त्वचा पर झुर्रियाँ पड़ने का डर रहता है। अजीर्ण (अपच), हनुग्रह (ठोड़ी की हड्डी की जकड़न), पीनस (नाक की हड्डी में सूजन), अरुचि, नस्य लेने पर तथा रात्रि में मुख पर लेप नहीं करना चाहिए।

छः ऋतुओं में लगाये जाने वाले लेपों की अलग-अलग सूची नीचे दी जा रही है।

ऋतु	लेप
हेमन्त	बेर की गुठली, अडूसे की जड़, पीली सरसों।
शिशिर	कटेरी की जड़, काले तिल, दारू हल्दी की (छिलके सहित)।
बसन्त	दाभ की जड़, चन्दन, खस, शिरीष, सौफ कवल की कणियाँ।
ग्रीष्म	कुमुद, उत्पल, गुलाब फूल, दूब, मुलहठी चन्दन।
वर्षा	कालीयक, तिल, खस, जटामांसी,
शरद्	तालीस, पुण्डरीक, मुलहठी, तगर, अगरू।

320. "दौर्गन्ध्यं गौरवं तन्द्रा कण्डूमलमरोचकम्।
स्वेद वीभत्सां हन्ति शरीरपरिमार्जनम्।।" — च.सू. 5/93

"उद्वर्तनं वातहरं कफमेदोविलापनम्।
स्थिरीकरणमङ्गानां त्वक्प्रसादकरं परम्।।
सिरामुखविविक्तत्वं त्वक्स्थस्याग्नेश्च तेजनम्।
उद्धर्षणोत्सादनाभ्यां जायेयातामसंशयम्।।
उत्सादनात्भवेत्स्त्रीणां विशेषात्कान्तिमद्वपुः।" — सू.चि. 24/51-53

"उद्धर्षण तु विज्ञेयं कण्डूकोठानिलापहम्।
ऊर्वोः सञ्जनयत्याशु फेनकः स्थैर्यलाघवे।।" — सू.चि. 24/54-55

♦ स्नान[321]

शरीर की स्वच्छता के लिए प्रतिदिन स्नान करना आवश्यक है। स्नान करते समय नाक, कान, पैर की अच्छी तरह सफाई करनी चाहिए। इससे मानव-शरीर को नव जीवन की प्राप्ति होती है। स्नान करने कूपों की अग्नि अन्दर प्रवेश कर जाती है, जिससे पाचक अग्नि बढ़ती है मन की प्रसन्नता बढ़ने से स्नान आयु को बढ़ाने वाला होता है, बल की वृद्धि करता है तथा थकावट, खुजली, त्वचा की गन्ध, पसीना, दुर्गन्ध, सुस्ती, प्यास और जलन को खत्म करता है।[322]

नेत्र, मुख और कान के रोग में, 'दस्त,' पेट में अफारा, पीनस एवं अजीर्ण होने पर, तथा भोजन के तुरन्त बाद स्नान नहीं करना चाहिए। इससे रोग बढ़ने की आशंका रहती है।[323]

♦ वस्त्र–धारण

स्नान के पश्चात् सदा स्वच्छ सुन्दर और सभ्य के वस्त्र पहनने चाहिए। इससे शरीर की सुन्दरता और आकर्षण बढ़ता है और आयु की वृद्धि होती है। अच्छे वस्त्रों से प्रसन्नता, सभाओं आदि में उपस्थित होने की योग्यता और अच्छा व्यक्तित्व बनता है। अशुभ से तथा ऋतु के कुप्रभाव (सर्दी, गर्मी, वर्षा) से बचा जाता है। ऋतु के अनुसार ही वस्त्रों को धारण करना चाहिए, जैसे-गर्मियों में सफेद या हलके रंग के तथा हलके वस्त्र, और सर्दियों में गहरे रंग के और ऊनी (भारी) वस्त्र पहनने चाहिए।[324]

♦ इत्र व सुगन्धी (परफ्यूम्स) का प्रयोग

मनुष्य को समय एवं ऋतु के अनुसार

---

321. "पवित्रं वृष्यमायुष्यं श्रमस्वेदमलापहम्।
शरीरबलसंधानं स्नानमोजस्करं परम्।।" — च.सू. 5/94
"निद्रा दाहश्रमहरं स्वेदकण्डूतृषापहम्।
हृद्यं मलहरं श्रेष्ठं सर्वेन्द्रियविबोधनम्।।
तन्द्रापाप्मोदशमनं तुष्टिदं पुंस्त्ववर्धनम्।
रक्तप्रसादनं चापि स्नानमग्नेश्च दीपनम्।।" — सू.चि. 24/57-58
"नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरस्सु च।
स्नानं समाच्चरेन्नियं गति प्रस्रवणेषु चं ।।" — मनुः

322. "उष्णाम्बुनाऽधःकायस्य परिषेको बलावहः।।
तेनैव तूत्तमाङ्गस्य बलहृत केशचक्षुषाम्।" — अ.स.सू. 3/69-70
"उष्णेन् शिरसः स्नानमहितं चक्षुषः सदा।
शीतेन शिरसः स्नानं चक्षुष्यमिति निर्दिशेत्।।" — सू.चि. 24/59
"अशिरस्कं तदुष्णेन् बल्यं वातकफापहम्।"
(योगरत्नाकर)

323. "स्नानमर्दितनेत्रास्यकर्णरोगातिसारिषु।"
आध्मानपीनसाजीर्णभुक्तवत्सु च गर्हितम्।। — अ.स.सू. 3/75
"तच्चातिसार ज्वरितकर्णशूलानिलार्तिषु।
आध्मानारोचकाजीर्णभुक्तवत्सु च गर्हितम्।।" — सू.चि. 24/62

फूल-मालाओं और इत्रों (Perfumes) का प्रयोग भी करना चाहिए। इससे शरीर में सुगन्ध और आकर्षण के अतिरिक्त शक्ति एवं पुष्टि भी बढ़ती है। मन प्रसन्न रहता है, जिसके परिणामस्वरूप आयु में वृद्धि होती व काम की इच्छा भी बढ़ती है।[325]

♦ आभूषण, मणि आदि धारण करना

सोने, चांदी आदि से बने आभूषण पहनने से शरीर की सुन्दरता और आकर्षण तो बढ़ता ही है। साथ में प्रसन्नता, सफलता शरीर व चेहरे की चमक, मंगल और आयु भी बढ़ते है। इन सबके परिणामस्वरूप मनुष्य की जीवनी शक्ति भी बढ़ती है।

इन आभूषणों के अलावा रत्न (हीरा, मरकत, गोमेद आदि), सिद्ध-मन्त्र तथा सहदेवी आदि औषधियों को भी धारण करते रहना चाहिए। इससे विष का भय तथा ग्रह-बाधा आदि से रक्षा होती है।[326]

♦ सुगन्धित पदार्थों को चबाना

मुख में सुगन्ध, अच्छा स्वाद व स्वच्छता बनाए रखने के लिए जायफल, सुपारी, छोटी इलायची, लौंग, पान के पत्ते और कपूर का सत्त्व आदि चबाना चाहिए। इससे मुख के रोग भी दूर होते है तथा भोजन में स्वाद भी बढ़ता है।[327]

---

324. "काम्यं यशस्यमायुष्यमलक्ष्मीघ्नं प्रहर्षणम्।
श्रीमत्पारिषदं शस्तं निर्मलाम्बरधारणम्।।" — च.सू. 5/95
"कदाऽपि न जनः सद्भिधार्य मलिनमम्बरम्।
तत्तु कण्डूकृमिकरं ग्लान्यलक्ष्मीकरं परम्।।" — भा.प्र.पू. 5/93
"वासो न धारयेज्जीर्णं मलिनं रक्तमुल्वणम्।
नैव चान्येन् विधृतं वस्त्रं पुष्पमुपानहौ।।" — अ.स.सू. 3/34-35

325. "वृष्यं सौगन्ध्यमायुष्यं काम्यं पुष्टिबलप्रदम्।
सौमनस्यमलक्ष्मीघ्नं गन्धमाल्यनिषेवणम्।।" — च.सू. 5/96
"गन्धमाल्यादिकं वृष्यमलक्ष्मीघ्नं प्रसादनम्।" — अ.स.सू. 3/34

326. "धन्यं मङ्गल्यमायुष्यं श्रीमद्व्यसनसूदनम्।
हर्षणं काम्यमोजस्यं रत्नाभरणधारणम्।।" — च.सू. 5/97
"रसे रसायने दाने धारणे देवतार्चने।
सुलक्ष्माणि सुजातीनि सर्वाण्युक्तनि शोधयेत्।।"

327. धार्याण्यास्येन वैशद्यरूचिसौगन्ध्यमिच्छता।।
जातीकटुकपूगानां लवङ्गस्य फलानि च ।
कक्कोलस्य फलं पत्रं ताम्बूलस्य शुभं तथा।।
तथा कर्पूरनिर्यासः सूक्ष्मैलायाः फलानि च। — च.सू. 5/76-77
"रूचिवैशद्यसौगन्ध्यमिच्छन् वक्त्रेण धारयेत्।
जातीलवङ्गकर्पूरकंकोलकटुकैः सहः।।
ताम्बूलीनां किसलयं हृद्यं पूगफलान्वितम्।।" — अ.स.सू. 3/36-37

♦ चप्पल व जूते पहनना

पैरों में चप्पल व जूते पहनने से गर्मी, सर्दी आदि से पैरों की रक्षा होती है, पैरों को आराम मिलता है, काँटों, रेंगने वाले जन्तुओं व रोगाणुओं से सुरक्षा होती है, पैरों की त्वचा ठीक रहती व नेत्रों की रोशनी तेज़ होती है[328] परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ये जूते, चप्पल आदि ठीक माप के और सुविधाजनक हों। अधिक ऊँची एड़ी वाले जूते, चप्पल असुविधाजनक होने के साथ-साथ कुछ समस्याएँ भी उत्पन्न कर सकते है। ये जूते, चप्पल मौसम के अनुकूल होने चाहिए। इससे पैरों को बल मिलता है तथा व्यक्ति आसानी से चल-फिर सकता है।

♦ बालों और नाखूनों की देखभाल

हर मनुष्य को अपने दाढ़ी-मूँछ, सिर के बाल तथा नाखून आदि ठीक समय पर काटने और सँवारने चाहिए। नाखून अपवित्र अंग हैं। इनमें अनेक प्रकार के मल-पदार्थ इकट्ठे हो जाते हैं अतः जहां तक हो सके, इन्हें छोटा ही रखना चाहिए। इससे शरीर की स्वच्छता, निरोगता, सुन्दरता और ताज़गी के साथ-साथ शरीर पुष्टि, काम की इच्छा एवं आयु की वृद्धि भी होती है।[329]

♦ आँखों में सुरमा लगाना

आँखों को स्वस्थ बनाये रखने और आँखों की रोशनी बढ़ाने के लिए नियमित रूप से सुरमा, नेत्र-बिन्दु (Eye-drop), आदि डालने चाहिए। आँखों में अग्नि महाभूत मुख्य रूप से पाया जाता है और तेज (अग्नि) का विरोधी होने के कारण कफ दोष इन पर विशेष रूप से आक्रमण करता है। अतः नेत्रों को रोगों से बचाने के लिए तथा इन्हें स्वस्थ रखने के लिए कफ दोष दूर करने वाले अंजनों का प्रयोग बहुत लाभप्रद है[330] इसीलिए पाँच से आठ दिनों के बीच एक बार रसांजन (रसौत) आदि लगाना

---

328. "पादरोगहरं वृष्यं रक्षोघ्नं प्रीतिवर्धनम्।
सुखप्रचारमौजस्यं सदा पादत्रधारणम्।।
अनारोग्यमनायुष्यं चक्षुषोरूपघातकृत्।
पादाभ्यामनुपानाद्भ्यां सदा चङ्क्रमणं नृणाम्।।" — सू.चि. 24/71-72
"पादुकाधारणं कुर्यात्पूर्वं भोजनंतः परम्।
पादरोगहरं वृष्यं चक्षुष्यं चायुषो हितम्।।"
"चक्षुष्यं स्पर्शनहितं पादयोर्व्यसनापहम्।
बल्यं पराक्रम सुखं वृष्यं पादत्रधारणम्।।" — च.सू. 5/100

329. "त्रिपक्षस्य केशश्मश्रुनखरोमणि वर्धयेत्।
न स्वहस्तैन दन्तैर्वा स्नानं चानुसभचरेत्।।" — अ.स.सू. 3/55
"पाप्मोपशमनं केशनखरोमापमार्जनम्।
हर्षलाघवसौभाग्यकरमुत्साहवर्धनम्।।" — सू.चि. 24/73
"पौष्टिकं वृष्यमायुष्यं शुचिरूपविराजनम्।
केशश्मश्रुनखादीनां कल्पनं सम्प्रसाधनम्।।" — च.सू. 5/99

चाहिए। इसके प्रयोग से आँखों से बहुत-सा पानी निकलता है और ये स्वच्छ हो जाती हैं।[331] (रसौत या रसांजन बनाने की विधि-दारूहल्दी के काढ़े को एक-चौथाई बकरी का दूध मिलाकर पका लें और घना बना लें।) रसौत आँखों के लिए बहुत लाभदायक है। आंखों का दर्द होने पर इसका लेप करना चाहिए या शहद अथवा पानी में मिला कर इसकी बूंद आंखों में डालनी चाहिए। यह आँखों में लगती है और आँख से अश्रु भी निकालता है।

अंजन या सुरमे का प्रयोग करते समय एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि तेज़ सुरमे आदि का प्रयोग रात में ही किया जाए क्योंकि उस समय कफ की मात्रा कम होती है। दिन के समय इन्हें डालने से ज्यादा अधिक पानी निकलता है, जिससे नेत्र कमज़ोर हो जाते है। साथ ही, उन पर सूर्य की रोशनी का बुरा प्रभाव पड़ता है।[332] साधारणतः अंजन, काजल या सुरमा लगाने का समय प्रातःकाल है। ये आँखों को निर्मल करते हैं। सरसों के तेल से जले दीये से काजल बना कर भी लगाया जाता है। यह काजल पलकों पर मक्खी, आदि जन्तु नहीं आने देता। इससे पलकों के बाल घने और लम्बे होते है।

♦ भोजन

स्वास्थ्य को बनाये रखने में भोजन का बहुत महत्व है। भोजन सदा ही सही मात्रा और उचित समय पर तथा अनुकूल पदार्थों के साथ करना चाहिए। भोजन की मात्रा आदि प्रत्येक व्यक्ति की पाचन शक्ति और चयापचय की शक्ति पर निर्भर करते है।

कुछ खाद्य-पदार्थ (जैसे-मूँग,साठी,शाली) स्वभाव से ही पचने में हल्के माने जाते है। इन हल्के पदार्थों में वायु और अग्नि महाभूत अधिकता से

---

330. "चक्षुस्तेजोमयं तस्य विशेषाच्छ्लेष्मतो भयम्।
योजयेत् सप्तरात्रेऽस्मात् स्रावणार्थं रसाञ्जनम्।।" अ.स.सू. 3/26

331. "सौवीराञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोः प्रयोजयेत्।
पञ्चरात्रेऽटरात्रे वा स्रावणार्थे रसाञ्जनम्।।" च.सू. 5/15

332. "दिवा तन्न प्रयोक्तव्यं नेत्रयोस्तीक्ष्णमञ्जनम्।
विरेकदुर्बलादृष्टिरादित्यं प्राप्य सीदति।।
तस्मात् स्राव्यं निशायां तु ध्रुवमञ्जनमिष्यते।" च.सू. 5/17
"भुक्तवाञ्छिरसा स्नातः श्रान्तश्छर्दनवाहनैः।
रात्रौ जागरितश्चापि नाञ्ज्याज्ज्वरित एव च।।" सु.चि. 24/20

अञ्जन लाभः

"मुखं लघु निरीक्षेत दृढं पश्यति चक्षुषा।
मतं स्रोतोऽञ्जनम् श्रेष्ठं विशुद्धं सिन्धुसम्भवम्।।
दाहकण्डूमलघ्नं च दृष्टिक्लेदरूजापहम्।
तेजोरूपावहं चैव सहते मारूतातपौ।।" सु.चि. 24/17-18
मात्राशी स्यात् आहारमात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी।। च.सू. 5/3
"मात्रावद्धयशनमशितमनुपहत्य प्रकृतिं बलवर्णसुखायुषा योजयत्युपयोक्तारमवश्यमिति।" च.सू. 5/8

पाये जाते है। ये पदार्थ भूख को बढ़ाते है तथा जल्दी हजम हो जाते है अतः यदि इनका सेवन कुछ अधिक मात्रा में भी कर लिया जाए, तो अधिक नुकसान नहीं करते परन्तु सीमा से अधिक मात्रा में लेने पर ये भी पाचन-शक्ति और चयापचय शक्ति पर कुप्रभाव डालते है। इसके विपरीत, कुछ पदार्थ (उड़द,पीठी,आदि) स्वभाव से ही पचने में भारी होते है तथा देर से हजम होते है। इनमें जल और पृथ्वी महाभूत की प्रधानता होती है। ये भूख को भी कम करते हैं। अतः थोडी-सी भी अधिक मात्रा में लेने पर ये पाचन-क्रिया और चयापचय क्रिया पर बुरा प्रभाव डालते है।[333] हां, यदि किसी व्यक्ति की पाचकाग्नि तेज़ है, तो वह भारी पदार्थो को भी आसानी से पचा सकता है। सामान्यतः ये भारी खाद्य-पदार्थ उतनी मात्रा में ही खाने चाहिए, जिससे आधा या तीन-चौथाई पेट ही भरे, शेष आधा या एक-चौथाई पेट खाली रखना चाहिए। इस प्रकार ये पदार्थ भी हानि नहीं पहुँचाते।[334]

भोजन सदा पहले किये गये भोजन के पच जाने के बाद ही करना चाहिए। इन बातों को ध्यान में रख कर किये गये भोजन से शरीर में वृद्धि होती है, रंग में निखार आता है, तथा आयु में वृद्धि होती है। इससे शरीर में तीनों दोष और धातु (रस,रक्त,आदि) भी सन्तुलित अवस्था में बने रहते है।[335]

♦ धूम्रपान

आयुर्वेद में सिर का भारीपन, सिरदर्द, नाक में सूजन, आधा सिर का दर्द कान व आँखों में पीड़ा, हिचकी, दमा, गले में रुकावट, दाँतों की पीड़ा और कमज़ोरी, कान, नाक व आँखों से पानी, आदि का स्राव होना, नाक व मुँह से दुर्गन्ध आना, भूख न लगना, हनु-स्तम्भ (ठोढ़ी की जकड़) मन्यास्तम्भ (Torticollis), खुजली, इन्फैक्शन, चेहरे का पीलापन, बालों का जल्दी पकना और गिरना, गंजापन, अधिक छींकें, बहुत अधिक नींद और सुस्ती, बेहोशी-सी होना, आवाज़ का भारीपन, नींद न आना, आदि अनेकों रोगों की चिकित्सा के लिए धूम्रपान बताये गये है।[336]

धूम्रपान के लिए अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियों और वनस्पतियों से सिगार तैयार करने का वर्णन है। इनमें तम्बाकू व अन्य आदि नशीले पदार्थो का प्रयोग नहीं किया जाता। औषधियों से तैयार ये धूम्रपान बालों, मस्तिष्क की हड्डियों, आवाज़ और ज्ञानेन्द्रियों को भी शक्ति प्रदान करते है। इनका सेवन करने वाला व्यक्ति वायु और कफ

---

333. "न चैवमुक्ते द्रव्ये गुरूलाघवमकारणं मन्येत लघूनि हि द्रव्याणि वाय्वग्निगुणबहुलानि भवन्ति, पृथ्वीसोमगुणबहुलानीतराणि, तस्मात् स्वगुणादपि लघून्यग्निसन्धुक्षणस्वाभावान्यल्पदोषाणि चोच्यन्तेऽपि सौहित्योपयुक्तानि, गुरूणि पुनर्नाग्निसन्धुक्षणस्वभावान्यसामान्यात् अतश्चातिमात्रं दोषवन्ति सौहित्योययुक्तान्यन्यत्र व्यायामाग्निबलात; सैषा भवत्यग्निबलापेक्षिणी मात्रा।।" च.सू. 5/6

334. "न च नापेक्षते द्रव्यं, द्रव्यापेक्षया च त्रिभागसौहित्यमर्धसौहित्यं वा गुरूणामुपदिश्यते, च.सू. 5/7

335. "कालस्तु ऋतुव्याध्यपेक्षो जीर्णाजीर्ण लक्षणश्च।" अ.स.सू. 10/11
"अजीर्णं हि पूर्वस्याहारस्यापरिणतो रस उत्तरेण संसृज्यमानः। सर्वान् दोषान् प्रकोपयत्याशु।।" अ.स.सू. 10/12

दोषों से उत्पन्न होने वाले सिर एवं गर्दन के रोगों का शिकार नहीं होता।[337]

दिन में धूम्रपान के लिए आठ बार समय निर्धारित किया गया है।[338] स्नान, जिह्वा रगड़ने, दाँत साफ करने, भोजन करने, छींकों के बाद नाक में किसी औषधि को डालने (नस्य), आँखों में सुरमा डालने और सोने के बाद। इन आठ क्रियाओं के बाद धूम्रपान लेने से रोग नहीं होते। प्रत्येक धूम्रपान में तीन कश लेने को कहा गया है।[339]

ठीक प्रकार से धूम्रपान की क्रिया होने पर छाती, गले तथा सिर में हलकापन आता है, तथा कफ पिघल कर निकल जाता है[340] जबकि जरूरत से ज्यादा धूम्रपान होने पर तालु, गला और सिर गर्म एवं शुष्क हो जाते हैं। सभी ज्ञानेन्द्रियों में भी गर्मी आ जाती है। प्यास अधिक लगती है। बेहोशी तथा चक्कर आने लगते हैं। शरीर के किसी अंग से रक्तस्राव भी हो सकता है।[341] अतः सावधानी से उचित मात्रा में ही यह क्रिया करनी चाहिए।

♦ कैसा आचरण करें ?

जीवन में स्वस्थ और सुखी रहने के लिए प्रत्येक मनुष्य को धर्म का पालन करना चाहिए। धर्म, अर्थ (धन आदि) और काम (इच्छा की पूर्ति) का पालन और सेवन इस प्रकार करना चाहिए कि उनमें आपसी विरोध न हो। सदा सत्य बोलना चाहिए। चिऊँटी, कीड़े-मकोड़े, आदि तुच्छ जन्तुओं को भी अपने समान देखना चाहिए। निर्धनता, रोग और शोक पीड़ित लोगों की सहायता के लिए सदा तैयार रहना चाहिए। याचक को निराश नहीं भेजना चाहिए न ही उसका तिरस्कार करना चाहिए। देवता, गाय,

---

336. गौरव शिरसः शूलं पीनसार्धावभेदकौ।।
कर्णाक्षिशूलं कासश्च हिक्काश्वासौ गलग्रहः। दन्तदौर्बल्यमास्रावःश्रोत्रघ्राणाक्षिदोषजः
पूतिर्घ्राणास्यगन्धश्च दन्तशूलमरोचकः। हनुमन्याग्रहः कण्डूः क्रिमयः पाण्डुता मुखे।।
श्लेष्म प्रसेको वैस्वर्यं गलशुण्डयुपजिहिका। खालित्यं पिञ्जरत्वं च केशानां पतनंतथा।।
श्रवथूश्चातितन्द्रा च बुद्धेर्मोहोऽतिनिद्रता। धूमपानातप्रशाम्यन्ति बलं भवति चाधिकम्।।
शिरोरूहकपालानामिन्द्रियाणां स्वरस्य च। न च वात कफात्मनो बलिनोऽप्यूर्ध्वजत्रुजा।।
धूमवक्त्रकपानस्य व्याध्यः स्युः शिरोगताः। च.सू. 5/27-32 तक

337. नवनाञ्जननिद्रान्ते चात्मवान् धूमपो भवेत्
तथा वातकफात्मानो न भवन्त्यूर्ध्वजत्रुजाः।। च.सू. 5/35
प्रयोगिकं ततो धूमं गन्धमाल्यादि चाचरेत्।
धूमादस्योर्ध्वजत्रूत्था न स्युर्वातकफामयाः।। अ.स.सू. 3/32

338. प्रयोगपाने तस्याष्टौ कालाः संपरिकीर्तताः।।
स्नात्वा भुक्त्वा समुल्लिख्य क्षुत्वा दन्तान्निघृष्य च।। च.सू. 5/33

339. रोगास्तस्य तु पेयाः स्युरापानास्त्रिस्त्रय स्त्रयः।

340. हृत्कण्ठेन्द्रियसंशुद्धिर्लघुत्वं शिरसः शमः।
यथेरितानां दोषाणां सम्यकपीतस्य लक्षणम्।। च.सू. 5/37

341. बाधिर्यमान्ध्यमूकत्वं रक्तपित्तं शिरोभ्रमम्।।
अकाले चातिपीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान्। च.सू. 5/38

ब्राह्मण, वृद्ध, वैद्य, राजा और अतिथि का आदर करना चाहिए।[342]

दूसरो की किसी वस्तु या सम्पत्ति पर अपना अधिकार नही जमाना चाहिए और न ही किसी की सम्पत्ति या स्त्री आदि की इच्छा करनी चाहिए।[343] किसी भी प्रकार के पाप कर्म से दूर रहना चाहिए। दुष्ट व्यक्ति के प्रति भी दुष्ट व्यवहार नहीं करना चाहिए।

दूसरो की गुप्त बातो और दोषो का खुलासा नही करना चाहिए। विश्वासघाती, कपटी, अधर्मी, दुराचारी, गर्भपात करने वाले, कंजूस और कुटिल स्वभाव वाले लोगों से दूर रहें। कल्याण करने वाले लोगों व मित्रो से सलाह लेनी चाहिए और अकल्याण करने वालो से सदा सावधान रहें।[344]

♦ कैसे आचरण से दूर रहें?

❖ पर्वत की ऊबड-खाबड ढलानों और पेड़ो पर नहीं चढ़ना चाहिए। खतरनाक वाहनों की सवारी तथा तेज खतरनाक बहाव वाली नदी में स्नान करना उचित नहीं।[345]

❖ ठीक प्रकार से न ढके हुए, तकिये से रहित, छोटे और असमतल बिस्तर पर न सोयें।[346]

❖ इन वस्तुओं व व्यक्तियों को न लाँघें-किसी सम्बन्धी, अच्छे वंश मे उत्पन्न व्यक्ति, अध्यापक, गुरू, पूज्य व्यक्ति, पवित्र वृक्ष एवं अवांछित व्यक्ति की परछाई को।[347]

❖ पूज्य व्यक्तियों एवं शुभ वस्तुओं को अपनी बाई ओर रख कर तथा अन्य व्यक्तियों व वस्तुओं की दाई ओर रख कर उनका

---

342. सत्यवादिनं क्रोधं निवृतं मद्यमैथुनात्।
अहिंसकमनायसं प्रशान्तं प्रियवादिनम्।।

343. जपशौचपरं धीरं दाननित्यं तपस्विनम्।
देवगोब्राह्मणाचार्यगुरूवृद्धार्चने रतम्।।

344. देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिज्ञमनहङ्कृतम्।
शस्ताचारमसङ्कीर्णमध्यात्म प्रवणेन्द्रियम्।।
उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम्।
धर्मशास्त्रपरं विद्यान्नरं नित्यरसायनम्।। च.चि. 1-4/33-34

च.सू. 8/19

345. "न गिरिविषममस्तकेष्वनुचरेत्, न द्रुममारोहेत्, न जलोग्रवेगमवगाहेत्।"
पुरोवातातपरजस्तुषारपुरूषानिलान्।।
अनजुः क्षवथुद्गारकासस्वप्नात्रमैथुनम्।
सशब्दमनिलं हस्तमूनेत्रोत्क्षेपवादितम्।।
कूलच्छायां सुरापानं व्यालंदष्ट्रिविषाणिनः।
हनिनार्यातिनिपुणसेवां विग्रहमुत्तमैः।।
सन्ध्यास्वभ्यवहारस्त्रीस्वपनाध्ययनचिन्तनम्।
आरोग्यजीवितैश्यवर्य विद्यासुस्थिरमानिताम्।।
तोयाग्निपूज्यमध्येन यान धूमं वाश्रयम्।
मद्यातिसक्ति विश्रम्भस्वातन्त्र्ये स्त्रीषु च त्यजेत्।। च.अ.स. 3/108-111

346. "न जानुसमं कठिनमासनमध्यासीत्, नानास्तीर्णमनुपहितमविशालसमं वा शयनं प्रपद्येत्।" च.सू. 8/19

अतिक्रमण न करें।

- ❖ अशिष्ट व्यवहार न करें, जैसे-सभा में जोर से हँसना, अधोवायु (गैस) और डकार को ऊँची आवाज में छोड़ना, मुख को ढके बिना जम्भाई लेना, छींक, खाँसी करना और ज़ोर से हँसना, नासिका में खुजली करना, दाँत किटकिटाना, नाखूनों से आवाज़ निकालना, ज़मीन कुरेदना, हड्डियों से आवाज़ निकालना, मिट्टी के ढेले को कुचलना, हाथ-पैर आदि अंगो को अनुचित ढंग से रखना, हिलाना आदि।[348]
- ❖ टकटकी बाँधकर न देखें-किसी ग्रह एवं बहुत चमकीली, अनिच्छित, अपवित्र और निन्दित पदार्थ या वस्तु को।[349]
- ❖ रात के समय प्रवेश और निवास न करें-किसी मन्दिर, पवित्र माने जाने वाले वृक्ष सार्वजनिक प्रांगण, बाग-बगीचे, चौराहे, श्मशान एवं एकान्त स्थान में।[350]
- ❖ अकेले नहीं जाएँ-जंगल, वधस्थान में।
- ❖ इनके समीप जाना ठीक नहीं-साँपों व खरतनाक सीगों और दाँतों वाले जानवरों, मन को स्थिर किये बिना और भोजन के पश्चात् मुँह-हाथ धोए बिना अग्नि के समीप।
- ❖ बच कर रहें- पूर्व दिशा से आने वाली हवा, धूप, गिरते ओलों एवं आँधी से।
- ❖ अनुचित है- अपनी शक्ति से अधिक कार्य करना और साहस दिखाना, आवश्यकता से अधिक सोना व स्नान करना, रात में जागना, अधिक मात्रा में पेय पदार्थो को पीना।[351]

अनुचित व अधार्मिक कार्य को करना, दुश्चरित्र व्यक्तियों, स्त्रियों व नौकर से मित्रता करना, सच्चरित्र व अच्छे लोगों से शत्रुता करना, अधिक समय तक घुटनों को ऊँचा करके बैठना, चारपाई, आदि के नीचे अग्नि रख कर तापना, थकावट में, कुल्ले और गरारे किये बिना तथा पूर्ण वस्त्रहीन होकर स्नान करना, स्नान के बाद पहले पहने हुए वस्त्र फिर पहनना।[352]

---

347. "नास्पृष्ट्वारत्नाज्यपूज्यमङ्ग.लसुमनसोऽभिनिष्क्रामेत्,
न पूज्यमङ्ग.लान्यपसव्यं गच्छेन्नेतराण्यनुदक्षिणम्।" च.सू. 8/19
"न वृद्धान्न गुरून्न गणान्न नृपान् वा अधिक्षिपेत्।" च.सू. 8/25

348. "नोच्चैर्हसेत् न शब्दवन्तं मारूतं मुञ्चेत्,
ना नावृतमुखो जृम्भां क्षवथु हास्यं वा प्रवर्तयेत्।" च.सू. 8/19

349. "सततं न निरीक्षेत् चलसूक्ष्माप्रियाणि च। अ.स.सू. 3/100
नाप्रशस्तं न विण्मूत्रं न दर्पणममार्जितम्।।" च.सू. 8/19
"ज्योतींष्यनिष्टंमेध्यमशस्तं च नाभिवीक्षेत्।" च.स. 8/19

350. "न व्यालानुपसर्पेन्न दंष्ट्रिणो न विषाणिनः।"
"न क्षपास्वमरसदनचैत्यचत्वर चतुष्पथो-पवनश्मशानाद्यातनान्यासेवेत च.स. 8/19
नैकः शून्यगृहं न चाटवीमनुप्रविशेत्।" च.सू. 8/19

351. "न साहसातिस्वप्नप्रजागरस्नानपानान्यासेवेत्, नोर्ध्वजानुश्चिरं तिष्ठेत्।"

♦ अध्ययन में सावधानी

समय के अनुसार तथा उचित प्रकाश में अध्ययन करना चाहिए। पढ़ते समय प्रकाश बाई ओर से या पीछे से आना चाहिए। किसी स्थान के जलने की प्रतीति होने पर अग्नि का तेज़ उपद्रव होने पर, उल्का भूकम्प, सूर्य या चन्द्र ग्रहण तथा महत्वपूर्ण त्योहारों पर, और प्रातः एवं सायं की सन्धिबेला में पढ़ना नहीं चाहिए।[353] उचित मुद्रा में बैठ कर तथा पुस्तक को उचित दूरी पर (न बहुत समीप और न बहुत दूर–लगभग एक फुट की दूरी पर) रख कर ही पढ़ना चाहिए। लेट कर पढ़ने से आँखे कमज़ोर होती है। पढ़ते हुए ध्यान रखना चाहिए कि शब्द का उच्चारण अधूरे रूप में न हो, स्वर बहुत अधिक ऊँचा या बहुत धीमा नहीं होना चाहिए, आवाज रूखी और कठोर भी नहीं होनी चाहिए। शब्दों का उच्चारण उचित दबाव डाल कर, न बहुत शीघ्रता से और न बहुत धीमी गति से तथा न बहुत लटका कर किया जाना चाहिए।[354]

♦ सामान्य आचार–विहार

किसी भी व्यक्ति को सामान्य रूप से माने जाने वाले नियमों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए, और न ही समाज द्वारा मान्य आचार-संहिता को तोड़ना चाहिए।

- ❖ रात्रि में तथा अनुचित स्थानों पर घूमना उचित नहीं है।
- ❖ प्रातः और सायंकाल की सन्धिबेलाओं में खाना, अध्ययन करना, सोना तथा मैथुन क्रिया करना मना है।[355]
- ❖ मद्यपान, जुआ खेलना तथा वेश्याओं के प्रति झुकाव नहीं रखना चाहिए।[356]
- ❖ किसी भी व्यक्ति का अपमान करना अथवा अहंकार पूर्ण, अशिष्ट एवं अमित्रता का व्यवहार करना अनुचित है।
- ❖ चुगलखोरी तथा वृद्धों, अध्यापकों, समूह में बैठे लोगों और राजा के प्रति कठोर शब्द कहना असभ्यता है।
- ❖ बहुत बातूनी होना, असहिष्णुता (सहनशीलता न रखना) और अति साहस करना ठीक नहीं।
- ❖ अपने सेवकों की देख-भाल अच्छी प्रकार करनी चाहिए, उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।[357]
- ❖ हर व्यक्ति पर पूरा विश्वास करना, उसके

---

352. "नित्यं अनुपहतवासाः सुमनाः सुगन्धिः स्यात्।" चरक सूत्र 8/18
353. "न विद्युत्स्वनार्तवीषु नाभ्युदितासु दिक्षु नाग्निसंप्लवे न भूमिकम्पे न महोत्सवे नोल्कापाते न महाग्रहोपगमने न नष्टचन्द्रायां तिथौ न सन्ध्ययोर्नामुखाद् गुरोर्नावपतितं।" च.स. 8/24
354. "न विस्वरं नानवस्थितपादं नातिद्रुतं न विलम्बितं नातिक्लीबं नात्युच्चैर्नातिनीचैः स्वरैरध्ययनमभ्यस्येत्।" च.स. 8/24
355. "सन्ध्यास्वभ्यवहारस्त्रीस्वप्नाध्ययन चिन्तनम्।" अ.स.सू. 3/111
356. "न मद्यद्यूतवेश्याप्रसङ्ग-रूचिः स्यात्, न गुह्यं विवृणुयात, न कञ्चिदवजानीयात्, नाहंमानी स्यान्नादक्षो नादक्षिणो नासूयकः।" च.सू. 8/25
357. "न चातिब्रूयात्, न बान्धवानुरक्तकृच्छ्रद्वितीयगुह्यज्ञान बहिष्कुर्यात्ः।" च.स. 8/25

आश्रित रहना या हर किसी पर सन्देह करना उचित नहीं है।[358]

- कोई भी कार्य आरम्भ करने से पहले, उस कार्य के बारे में अच्छी प्रकार सोच-विचार कर लेना चाहिए परन्तु आरम्भ करने के बाद न तो उसे टालना चाहिए और न अधूरा छोड़ना चाहिए। दीर्घसूत्रता (टालना) की आदत को दूर करना चाहिए।[359]
- किसी कार्य में सफलता प्राप्त होने पर न तो फूल कर कुप्पा होना चाहिए और न अहंकार या अभिमान ही करना चाहिए। असफल होने पर बहुत दुःखी होना भी ठीक नहीं।
- बहुत खुशी या गुस्से में भावुक होकर कार्य नहीं करना चाहिए, और न ही छोटी-मोटी बातों के विषय में आवश्यकता से अधिक संवेदनशील होना चाहिए।
- मनुष्य को अपनी इन्द्रियों और मन का गुलाम नहीं होना चाहिए परन्तु इनको बहुत दबा कर भी नहीं रखना चाहिए।
- सदा अपने स्वभाव और प्रकृति को ध्यान में रख कर ही व्यवहार करना चाहिए।
- स्वाभिमानी होना ठीक है, परन्तु सदा अपने प्रति किये गए अपमान को ही याद नहीं करते रहना चाहिए।
- कारण और परिणाम के आपसी सम्बन्ध (जैसे-अच्छे कार्य का परिणाम अच्छा और बुरे का परिणाम बुरा होता है) पर विश्वास रखना चाहिए और उसी के अनुसार कार्य भी करना चाहिए।
- व्यक्ति का अपना चरित्र, आचार-व्यवहार तथा आदतें आपत्तिजनक नहीं होनी चाहिए। गुप्त अंगों का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।[360]
- अपने सुख में दूसरों को भी शामिल करना चाहिए।

मित्रता किन से करें?[361]

उन व्यक्तियों के साथ मित्रता करें जो-

- आयु, बुद्धि, ज्ञान, विवेक, शुद्ध आचार-व्यवहार, धैर्य, स्मृति, एकाग्रता आदि गुणों से युक्त हों।
- जिन्होंने ज्ञान और परिपक्वता प्राप्त कर ली है अथवा जिनकी परिपक्व और अनुभवी लोगों के साथ संगति है।
- जो शान्त स्वभाव वाले, चिन्ताओं से मुक्त तथा मानवोचित स्वभाव को जानने वाले हैं।
- जो सबके साथ अच्छा व्यवहार करते है तथा सदा सबका कल्याण के लिए तैयार रहते हैं।
- सच्चरित्र का पक्ष करने वाले तथा जिनका नाम और दर्शन शुभ माना जाता है।

---

358. "न सर्वविश्रम्भी न सर्वाभिशङ्की न सर्वकालविचारी।" च.स. 8/26
359. "न चातिदीर्घसूत्री स्यात्।" च.स. 8/27
360. "न गुह्यं विवृणुयात्।" च.स. 8/25
361. "निर्भीकः, ह्रीमान् धीमान् महोत्साहः दक्षः क्षमावान् धार्मिकः आस्तिकः, विनयबुद्धिविद्याभिजनवयोवृद्धसिद्धाचार्याणामुपासिता।" चरक सूत्र 8/18

♦ किन लोगों के साथ मित्रता न रखें?

जिन लोगों में ऊपर लिखित गुण न पाये जाएं तथा जो दूषित चरित्र वाले, पाप करने में रुचि रखने वाले, दूषित भाषा का प्रयोग करने व दूषित विचारों से युक्त है तथा जो दूसरों की निन्दा व चुगली करने वाले, झगड़ालु, लालची, दूसरों के गुणों से ईर्ष्या करने वाले, दूसरों को बदनाम करने वाले, चंचल मन व स्वभाव वाले, क्रूर, निर्दयी और अधर्मी लोग है, उनके साथ मित्रता कभी नहीं रखनी चाहिए।[362]

2. रात्रिचर्या

(रात में खान–पान और आचार–व्यवहार)

दिन और रात को मिलाकर 24 घण्टों की पूरी अवधि को ही दिन कहा जाता है। अतः रात्रिचर्या भी दिनचर्या का ही अंग होता है। दिन भर के सभी काम और परिश्रम करने के बाद रात्रि में विश्राम की आवश्यकता अनुभव होती है। चूंकि नींद या सोने की क्रिया ही रात में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, अतः रात्रिचर्या में सबसे पहले नींद के विषय में ही जानकारी प्रस्तुत करते है।

♦ नींद या निद्रा :

सभी जानते है कि शरीर को स्वस्थ और ताज़ा बनाए रखने में ठीक प्रकार नींद लेना बहुत आवश्यक है। सारे दिन के कार्यो को करने के बाद जब शरीर और मस्तिष्क थक कर निष्क्रिय से हो जाते है तथा ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ भी थक जाती है तो व्यक्ति नींद की अवस्था में आ जाता है।[363] इस प्रकार वह स्थिति जब मन का सम्पर्क ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से टूट जाता है तथा वे एकदम निष्क्रिय सी हो जाती है, नींद या निद्रा कहलाती है। नींद की स्थिति में शरीर में सांस लेना, छोड़ना, रक्त-संचार आदि बहुत महत्वपूर्ण कार्य ही चलते रहते है, शेष कार्य रुक जाते है। इससे शरीर की बहुत कम ऊर्जा ही खर्च होती है, शेष बची ऊर्जा (शक्ति) बल आदि को बढ़ाती है। यही कारण है कि सोने के बाद व्यक्ति अपने को स्वस्थ, तरोताज़ा और उत्साह से युक्त अनुभव करता है।

रात का समय नींद के अनुकूल पड़ता है क्योंकि रात में शरीर का कफ दोष और मन में तमस दोष नींद लाने में सहायक होते है।[364] रात्रि में अन्धकार, शोर की कमी तथा दिन की अपेक्षा ठण्डक अधिक होने से ये दोनों दोष बढ़ जाते है अतः अच्छी नींद आने में सहायता मिलती है।

---

362. "न लोकभूपविद्विष्टैर्न सङ्गच्छेत नास्तिकैः।
कलि वैररूचिर्न स्याद्धीरः सम्पद्विपत्तिषु।।" अ.सं.सू. 3/82

363. ''यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विता।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः।। च.सू. 21/35

यह नींद भी दो प्रकार की होती है :

1. स्वप्न–अवस्था	इसमें व्यक्ति सोते-सोते सपने देखते रहता है। अवचेतन मन संकल्प-विकल्पों से घिरा रहता है। इस प्रकार यह नींद गहरी और पूरी तरह विश्राम देने वाली नहीं होती।[365]
2. सुषुप्त–अवस्था	इसमें मन और इन्द्रियाँ दोनों निष्क्रिय होते हैं।

सुषुप्त-अवस्था की कम समय की नींद भी मनुष्य के शरीर और मन को स्वस्थ एवं ताज़ा बना देती है[366] जबकि स्वप्न-अवस्था की अधिक नींद भी थकावट दूर नहीं करती और ताज़गी प्रदान नहीं करती।

अच्छी नींद लाने के लिए शारीरिक श्रम और थकावट के साथ-साथ मानसिक रूप से पूरी तरह शान्त होना (अर्थात् क्रोध, भय, शोक, चिन्ता आदि मानसिक विकारों से रहित) भी आवश्यक है। जिन व्यक्तियों को नींद नहीं आती वे 'अनिद्रा' रोग से ग्रस्त माने जाते हैं तथा अनेक प्रकार के मानसिक शारीरिक विकारों से पीड़ित रहते हैं।[367]

---

364. हृदयं चेतना स्थानमुक्तं सुश्रुता देहिनाम्।
तमोऽभिभूते तस्मिस्तु निद्राविशति देहिनम्।।
निद्रा हेतु स्तमः सत्वं बोधने हेतुरुच्यते।
स्वभाव एव वा हेतुर्गरीयान् परिकीर्त्यते।। — सु.शा. 4/34

365. पूर्वदेहानुभूतांस्तु भूतात्मा स्वपतः प्रभुः।
रजोयुक्तेन मनसा गृह्लात्यर्थाञ्शुभाशुभान।।
करणानां तु वैकल्ये तमसाभि प्रवर्धिते।
अस्वपन्नपि भूतात्मा प्रसुप्त इव चोच्यते।। — सु.शा. 4/36

366. "देह विश्रयते यस्मात्तस्मान्निदा प्रकीर्तिता।
निद्रांतु वैष्णवी पाप्मानमुपदिशन्ति, सा
स्वभावत एव सर्वप्रणिनोऽभि स्पृशति।। — सु.शा. 1
सैव युक्ता पुनर्युङक्ते निद्रा देहं सुखायुषा।
पुरुषं योगिनं सिद्धया सत्या बुद्धिरिवागता।। — च.सू. 21/38
भोजनान्तंर निद्रा वातं हरति पित्तह्वत्।
कफं करोति वपुषः पुष्टिंसौख्यं तनोति हि।। — भा.प्र. 5/220

367. निद्रानाशादग्मर्द शिरोगौरवजृम्भिकाः। — वा.सू. 7/63-64
जाड्यं ग्लानिभ्रमापक्तितन्द्रारोगाश्च वातजाः।। — वा.सू. 7/65
असात्म्याज्जागरादर्धं प्रातः स्वप्यादभुक्तवान्।।

अनिद्रा के कारण और उपाय

नींद न आने (अनिद्रा) के कुछ प्रमुख कारण होते हैं :

- मानसिक विकार, जैसे - भय, चिन्ता, शोक और क्रोध,
- अत्यधिक शारीरिक व्यायाम, परिश्रम और थकावट,
- रक्त-मोक्षण अर्थात् शरीर से रक्त निकलवाने की क्रिया,
- अति उपवास,
- धूम्रपान,
- असुविधाजनक बिस्तर व स्थान,
- सत्त्व गुण की अधिकता और तमोगुण की कमी,
- वृद्धावस्था तथा कुछ रोग विशेषकर वायु दोष से उत्पन्न शूल, पीड़ा आदि रोग।
- वमन (उल्टी) और विरेचन (दस्त) की क्रियाओं द्वारा सिर एवं शरीर में से दोषों का अधिक मात्रा में निकलना
- स्वाभाविक रूप से ही कम नींद आना।[368]

368. कायस्य शिरसश्चैव विरेकश्छर्दनं भयम्।
चिन्ताक्रोधस्तथा धूमो व्यायामो रक्तमोक्षणम्।।
उपवासोऽसुखा शय्या सत्त्वौदार्यं तमोजयः।
निद्राप्रसंगमहितं वारयन्ति समुत्थितम्।।
एत एव च विज्ञेया निद्रानाशस्य हेतवः।।
कार्यं कालो विकारश्च प्रकृति वायुरेव च।। च.सू. 21
विरेकः कायशिर सोर्वमनं रक्तमोक्षाणम्।।
धूमक्षुत्तृडत्यथा हर्षशोक मैथुन भी क्रुधः।
चिन्तोत्कण्ठाऽसुखा शय्या सत्वौदार्यं तमोजयः।। अ.स.सू. 9/53
इक्षान्नं चाहितां निद्रां वारयन्ति प्रसङ्गिनीम्। अ.स.सू. 9/54
कालशील क्षयो व्याधिर्वृद्धिश्चानिलपितयोः। अ.स.सू. 9/55

उपाय :

अनिद्रा को दूर करने के लिए अर्थात् नींद लाने के लिए निम्न उपाय प्रयोग में लाये जा सकते हैं :

- ❖ मालिश, उबटन और स्नान व हाथ-पैर आदि अंगों को दबाना,
- ❖ स्निग्ध पदार्थों, दही के साथ शालि चावल, मादक द्रव्यों एवं दूध का सेवन,
- ❖ मानसिक रूप से प्रसन्न रहना,
- ❖ रुचि के अनुसार संगीत सुनना,
- ❖ आँखों, सिर और मुख के लिए आरामदायक मलहमों का प्रयोग करना,
- ❖ सोने के लिए आरामदायक बिस्तर और शान्त स्थान
- ❖ इत्र (perfume) एवं अन्य सुगन्धियों को सूंघना

♦ दिन के समय सोने की मनाही :

दिन में सोने से शरीर में कफ और पित्त दोष बढ़ जाते हैं जिससे रोग उत्पन्न हो सकते है अत: दिन के समय सोना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। दिन के समय सोने से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो सकते है,[369] जैसे- हलीमक (खतरनाक प्रकार का पीलिया), सिर दर्द, शरीर का भारीपन, शरीर में दर्द, पाचन-शक्ति की कमज़ोरी, हृदयोपलेप (ऐसा महसूस होना जैसे हृदय पर बलगम जमी हो), सूजन, भोजन में अरुचि, उलटी अथवा उलटी की इच्छा, नाक में सूजन (नासाशोथ), आधे सिर में दर्द, शीत पित्त

---

369. अकालेऽतिप्रसगाच्च न च निद्रानिषेविता
सुखायुषी पराकुर्यात्कालरात्रिरिवापरा।। — च.सू. 21/37
अ.स.सू. 9/45
दिवास्वप्नो हितोऽन्यस्मिन कफपित्तकरो हि सः।। — मा.नि.
मुक्तमात्रस्य च स्वपनास्द्वन्त्यग्नि कुपितः कफ।
तस्मात्रजागृयाद्रात्रौ दिवास्वपनं च वर्जयेत्। — सु.शा. 4/38
ज्ञात्वा दोषकरावेतौ बुधः स्वपनं मितं चरेत्।।

त्वचा में चकत्ते, विस्फोट या छाले होना, फोड़े-फुंसियाँ, खुजली, तन्द्रा, (सुस्ती), खाँसी, गले के रोग[370], बुद्धि और स्मरण शक्ति की कमी, शरीर के रसवह, रक्तवह आदि स्रोतों में रुकावट, ज्वर, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों में कमज़ोरी, कृत्रिम विषों का अधिक विषैला प्रभाव व इस प्रकार के अन्य रोग। अत: मोटे शरीर वाले, अधिक स्निग्ध पदार्थों का सेवन करने वाले, कफ प्रकृति वाले कफज रोगों से पीड़ित, जोड़ों के दर्द से ग्रस्त तथा कृत्रिम विष के शिकार लोगों को दिन में बिल्कुल नहीं सोना चाहिए।[371]

♦ अपवाद :

ग्रीष्म ऋतु में रात्रि की अवधि कम हो जाती है तथा शरीर में जलीय तत्वों का अधिक शोषण होने से वायु बढ़ जाती है अत: इस ऋतु में सभी मनुष्यों के लिए दिन में सोने की अनुमति है।[372] इसके अतिरिक्त कुछ अन्य स्थितियों में भी दिन के समय सोने की मनाही नहीं है, जैसे- संगीत, गायन, अध्ययन व मादक द्रव्यों के सेवन तथा अधिक चलने से थकान होने पर, क्षय, थकावट, प्यास, दस्त, शूल, दमा, हिचकी जैसे रोगों से पीड़ित होने पर, वृद्धावस्था और बाल्यावस्था में क्षीण देह होने पर, गिरने अथवा आक्रमण आदि से घायल होने पर किसी वाहन पर यात्रा करने, रात्रि जागरण, क्रोध, शोक एवं भय से थके होने पर दिन में सोने पर भी धातुएँ एवं शक्ति सन्तुलित स्थिति में रहते हैं। कुपित कफ दोष भी शरीर के अंगों का पोषण करता है तथा दीर्घायु होती है।[373]

♦ रात के भोजन के मुख्य नियम :

भोजन के पाचन और नींद का परस्पर गहरा सम्बन्ध है।[374] भोजन ठीक प्रकार से हजम नहीं

---

370. हलीमक शिर:शूलंस्तैमित्य गुरुगात्रता:।। च.स. 21/46
ज्वरभ्रममतिभ्रशंस्त्रोतोरोधाग्निमन्दता:।
शोफारोचक हृल्लासपीनसार्द्धविभेदक।। अ.स.सू. 9/50
कण्डूरुक्कोठपिटका कासतन्द्रागलमया:।
विषवेग प्रवृतिश्चा भवेदहितनिद्रया।। अ.स.सू. 9/51
अकालशयबान्मोहज्वरस्तैमित्यपीनसा:। वा.सू. 9
शिरोरुक्शो हृल्लास स्त्रोतोरोधग्निमन्दता।। च.सू.

371. बहुमेद: कफा: स्वप्यु: स्नेहनित्याश्च नाहनि।।
विषार्त्त: कण्ठरोगी च नैव जातु निशास्वपि। अ.स.स. 9/48

372. ग्रीष्मे वायुचयादानरौक्ष्यरात्रयल्पभावत:
दिवास्वप्नो हितोऽन्यस्मिन् कफपित्तकरो हि स:।। अ.स.सू. 9/45

373. मुक्त्वातियाष्ययानाध्वमघस्त्री भारकर्मभि:।
क्रोधशोकभयै: क्लान्तान् श्वासहिध्माऽतिसारिण:।। अ.स.सू. 9/46
वृद्ध बालाबलक्षीणक्षततृट्च्छूलपीडितान्।
अजीर्ण्य भिकृतोन्मतान दिवास्वप्नोचितानपि।।
धातुसम्यं तया ह्योषा श्लेष्मा चाङ्गनि पुष्यति। अ.स.सू. 9/4…

होता तो नींद में बाधा उत्पन्न हो सकती है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि रात के समय जितना सम्भव हो सके, भोजन जल्दी ही करना चाहिए। भोजन और सोने के समय के बीच कम से कम दो घण्टे का अन्तर तो अवश्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त रात्रि का भोजन सुपाच्य और हलका होना चाहिए। भोजन करने के बाद कुछ दूर पैदल भ्रमण के लिए भी जाना चाहिए। इससे भोजन का पाचन ठीक प्रकार से हो जाता है और परिणामत: नींद अच्छी आती है।[375]

♦ रात के समय दही का सेवन क्यो न करें?[376]

सामान्यत: स्वास्थ्य के लिए हितकारी होते हुए भी दही अभिष्यन्दी (शरीर के स्रोतों में रुकावट करने वाला) होता है। इसी गुण के कारण आयुर्वेद में रात के समय दही खाने की मनाही है क्योंकि रात को भोजन करने के कुछ समय बाद ही सोना पड़ता है। भोजन-पाचन की प्रक्रिया सोते-सोते चलती रहती है, जो बहुत धीमी होती है। ऐसी स्थिति में स्रोतों में रुकावट की सम्भावना अधिक रहती है। परिणामस्वरूप नींद तथा चयापचय की क्रिया में भी बाधा उत्पन्न होती है। यही कारण है कि रात्रि के समय सामान्य मनुष्य के लिए भी दही सेवन की मनाही है। श्वास (दमा), खाँसी, जुकाम, जोड़ों के रोगों से पीड़ित रोगों के लिए तो रात के साथ दिन में भी दही खाने का निषेध किया गया है क्योंकि इस प्रकार के रोग तो स्रोतों में रुकावट होने के कारण ही पैदा होते है।

♦ रात्रि के समय पढ़ना :

आँखों को स्वस्थ बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि पढ़ते-लिखते समय प्रकाश की व्यवस्था उचित रूप से व पर्याप्त हो परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि सूर्य का प्रकाश जितना अनुकूल है, कृत्रिम प्रकाश उतना अनुकूल नहीं है। इससे नेत्रों की दृष्टि धीरे-धीरे कम होती जाती है। इस लिए जहाँ तक सम्भव हो, रात के समय कम पढ़ना चाहिए।[377] लिखने से आँखों पर अधिक जोर पड़ता है, अत: रात्रि में लेखन कार्य न करें तो अच्छा है।

---

374. त्रय उपस्तम्भा इति आहार: स्वप्नो: ब्रह्मचर्यमिति। — च.सू. 11/35

375. रात्री तु भोजनं कुर्यात्प्रथमप्रहरान्तरे।
किञ्चिदूनं समश्नीयाद् दुर्जरं तत्र वर्जयेत्।। — भा.प्र.
सायं भुक्त्वा लघु हितं समाहितमना: शुचि:।
शास्तारमनुसंस्मृत्य स्वशय्यां चाय संविशेत्।। — अ.स.सू. 3/120

376. न नक्तं दधि भुञ्जीत् न चाप्यघृतशर्करम।
नामुद्गयूंष नाक्षौद्रं नोष्णं नामलकैर्विना।। — च.सू. 7/61
ज्वरासृकिपित्त वीसर्प कुष्ठ पाण्डुवयभ्रमान्। — च.सू. 7/62
प्राप्नुयात्- कामलां चोग्रां विधिं हित्वा दधिप्रिय:।। — च.स. 8/24

377. न सन्धययोर्नामुखाद्गुरोर्नावपतितं।
न सन्ध्यास्वभ्य वहाराध्ययन-स्त्री स्वप्न सेवी स्यात्। — च.सू. 8/25

मैथुन अथवा सम्भोग क्रिया[378]

आयुर्वेद ने स्वास्थ्य एवं सामाजिक नियमों को देखते हुए मैथुन क्रिया के लिए भी कुछ सीमायें बांधी है। इस आधार पर निम्नलिखित परिस्थितियों में सम्भोग या मैथुन नहीं करना चाहिए :-

- स्त्री के मासिक धर्म के दौरान, किसी रोग या संक्रमण से पीड़ित होने पर तथा अपवित्र होने पर।
- बदसूरत, दुश्चरित्रा, अशिष्ट व्यवहार वाली तथा किसी प्रकार की कुल से रहित पर-स्त्री के साथ।
- मित्रवत् व्यवहार न होने पर, काम की इच्छा न होने पर, किसी अन्य पुरुष के प्रति आकर्षित अथवा विवाहिता एवं दूसरी जाति की स्त्री के साथ।
- पवित्र माने जाने वाले वृक्षों के नीचे, सार्वजनिक स्थानों, चौराहे, उद्यान, श्मशान घाट, वधस्थल, जल, चिकित्सालय, औषधालय, मन्दिर एवं ब्राह्मण, गुरु या अध्यापक के निवास स्थान में।
- प्रातः एवं सांय की सन्धि वेला में, पूर्णमासी, अमावस्या, प्रतिपदा (पक्ष का पहला दिन) व अष्टमी तिथि में।
- पुरुष के अपवित्र स्थिति में होने पर, काम की तीव्र इच्छा या उत्तेजना न होने पर।
- दूध आदि किसी वृष्य पदार्थ का सेवन न करने पर।
- भोजन बिल्कुल नहीं अथवा आवश्यकता से अधिक मात्रा में करने पर।
- मूत्र का तीव्र वेग, थकावट, शारीरिक श्रम एवं उपवास की स्थिति में।
- विषम स्थान में तथा एकान्त स्थान न होने पर।[379]

---

378. ग्राम्यधर्मं प्रवृत्तौ तु रजस्वलामनिष्टामनिष्टाचारा-
मशस्तामतिस्थूलामकृशां गर्भिणीं सूतिकामनुत्तानं
विकृताङ्गी गणिकामप्रजसं दुष्टयोनिमन्ययोनिमन्यस्त्रियं
विशेषाच्च वयो वर्णवृद्धां सगोत्रां । — अ.स.सू. 9/69
रजस्वलामकामाञ्च मलिनामप्रियां तथा।
वर्णवृद्धां वयोवृद्धां तथा व्याधिप्रपीडिताम्।। — सु.चि. 24/114

379. हीनांगी गर्भिणीं द्वेष्यां योनिदोषसमन्विताम्।
सगोत्रां गुरुपत्नीं च तथा प्रव्रजितामपि।। — सु.चि. 24/115
तथा चैत्यचत्वर चतुष्पथोपवन श्मशानायतन
सलिलौषधिद्विजगुरूसुरनृपालयेष्वहनि-गोसर्गे, मध्यन्दिने-
ऽर्द्धरात्रे पर्वदिनेष्वनङ्गे, पिपासुरप्रणीत संकल्पो वा न गच्छेत।। — अ.स.सू. 9/69

जनन इन्द्रिय के अलावा किसी अन्य इन्द्रिय के साथ भी सम्भोग करना निषिद्ध है। सम्भोग से पहले और बाद में एक गिलास दूध चीनी या शहद मिला कर अवश्य पीना चाहिए।[380]

3. ऋतुचर्या

(विभिन्न ऋतुओं में आचरण योग्य आहार–विहार)

हमारे शरीर पर खान-पान के अलावा ऋतुओं और जलवायु का भी प्रभाव पड़ता है। एक ऋतु में कोई एक दोष बढ़ता है तो कोई शान्त होता है, और दूसरी ऋतु में कोई दूसरा दोष बढ़ता और अन्य शान्त होता है। इस प्रकार, मनुष्य के स्वास्थ्य के साथ ऋतुओं का गहरा सम्बन्ध है। अत: आयुर्वेद में प्रत्येक ऋतु में दोषों में होने वाली वृद्धि, प्रकोप या शान्ति के अनुसार सब ऋतुओं के लिए अलग-अलग प्रकार के खान–पान और रहन-सहन (आहार-विहार) का उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार आहार-विहार का पालन करने से स्वास्थ्य की रक्षा होती है तथा मनुष्य रोगों से बचा रहता है।[381] हमारे देश की भौगोलिक स्थिति के अनुसार एक वर्ष में मुख्य रूप से तीन ऋतुएँ (मौसम) आती हैं- गर्मी, सर्दी और वर्षा। इन तीनों मौसमों में शरीर के अन्दर अनेक प्रकार के परिवर्तन आते हैं। ये तीन मौसम भी छः ऋतुओं में बँटे होते हैं।ये ऋतुएँ हैं- बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर। इन ऋतुओं का आधार सूर्य की गति है, जिसे अयन कहा जाता है।[382] अयन दो प्रकार के हैं-

1. उत्तरायण अर्थात् जब सूर्य उत्तर दिशा की ओर गति करता है। यह आदान काल भी कहलाता है, क्योंकि इस समय सूर्य की किरणें और हवाएँ तीव्र गर्म और रूक्ष होती हैं और पृथ्वी के जलीय अंश को सोख लेती है अत: इसका प्रभाव सभी औषधियों के साथ-साथ मनुष्य के शरीर पर भी पड़ता

---

380. स्नानाङ्गरागव्यजनेन्दुपादमांसासवक्षीरसान् रसालाम्।
भक्ष्मान् सिताढ्यान् सलिलं सुशीतं
सेवेत् निद्रां च रतान्ततान्त:।। — अ.स.सू. 9/76
स्नानुलेपहिमाणिखण्डश्वाहाशीतम्बुदुम्धरसयूष सुराप्रसन्ना सेवेत् .... — अन्य आचार्य

381. तस्याशिताद्यादाहाराद्बलं वर्णश्च वर्धते।
यस्यर्तुसात्म्यं विदितं चेष्टाहार व्यपाश्रयम्।। — च.सू. 6/3
चरधातोर्गति भक्षणार्थस्य चर्यमिति रुपम्,
तेन आहारो विहारा चर्यशस्देनीच्यते — अ.स.सू. 4/डल्हण

382. इह खलु संवत्संर षडङ्गमृतुविभागेन् विद्यात्।
तत्रादित्यास्योदगयनमादानं च त्रीनृतु ञ्छिशिरादीन्
ग्रीष्मान्तात् व्यवस्येत्, वर्षादीन् पुनर्हेमन्तान्तान्
दक्षिणायन विसर्ग च।। — च.सू. 6/4
त एते शीतोष्णबर्षा लक्षणाश्चन्द्रादित्यो:
कालविभागकरत्वादयने द्वे भवतो दक्षिणमुत्तरं च — च.सू.

है। इससे शारीरिक शक्ति में कमी होने लगती है और व्यक्ति दुर्बलता का अनुभव करता है। इस अवधि में शिशिर बसन्त और ग्रीष्म ऋतुएँ आती हैं।[383]

2. दक्षिणायन अर्थात् जब सूर्य दक्षिण दिशा की ओर गति करता है। इस समय सूर्य की किरणें तथा हवाएँ आदान काल की तरह शुष्क, गर्म और रूक्ष नहीं होतीं। वातावरण में चन्द्रमा के सौम्य गुणों की प्रधानता होती है तथा ताप कम हो जाता है। हवाओं, बादलों और वर्षा में ठण्डक आ जाती है। सब जगह चन्द्रमा की शीतलता रहती है। यह विसर्ग काल कहलाता है। वातावरण की शीतलता के कारण औषधियों और खाद्य पदार्थों में स्निग्धता आ जाती है। इससे मनुष्यों एवं अन्य प्राणियों की शारीरिक शक्ति में वृद्धि होती है।[384]

दक्षिण भारत में वर्षा अधिक होती है। अतः वर्षा ऋतु के दो भाग किये गये है - पहले भाग को प्रावृट् और दूसरे भाग को वर्षा ऋतु कहा गया है। जबकि उत्तर भारत में वर्षा कम होती है तथा ठण्ड अधिक पड़ती है। अतः यहाँ प्रावृट् ऋतु न मान कर शीतकाल की दो ऋतुएँ- हेमन्त और शिशिर मानी जाती हैं।

विसर्ग और आदान काल के प्रभावों के कारण आदान काल के अन्त और विसर्ग काल के प्रारम्भ में दुर्बलता अधिक रहती है। इन दोनों कालों के बीच के समय में मनुष्यों में बल भी मध्य प्रकार का अर्थात् न अधिक दुर्बलता और न अधिक शक्ति रहता है तथा विसर्ग काल के अन्त एवं आदान काल के आरम्भ में शरीर में बल की प्राप्ति अधिक होती है। समय की इन सभी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए ही आयुर्वेद ने सभी ऋतुओं में अलग-अलग आहार-विहार का वर्णन किया है।[385]

---

383. तत्र रविर्भाभिराददानो जगडतः स्नेहं वायवस्तीव्र रुक्षाश्चोपशोषयन्तः शिशिरबसन्तग्रीष्मेषु यथाकमं रौक्ष्यमुत्पादयन्ते रुक्षान रसारितक्त कषाय कटुकांश्चाभिवर्धयन्तो नृणां दौर्बल्यमावहन्ति।। च.सू. 6/6

शीतांशुः कलेदयत्युर्वी विवस्वान्शोषय त्यापि। तावुभावपि संश्रित्य वायुः पालयति प्रजाः।। सु.सू. 6/8

384. विसर्गस्तु सौम्यः। तस्मिन्नपि कालमार्गमेघावातवर्षाभिहत प्रभावे दक्षिणायनगेऽर्के शशिनिः चाव्याहतबले शिशिराभिर्भाभिः शश्वदाप्यायमाने माहेन्द्रसलिलप्रशान्तसन्तापे जगत्यरुक्षा रसाः प्रवर्धन्ते अम्ल लवण मधुराः यथाक्रमं बलं चोपचीयेते नृणामिति। अ.स.सू. 4/7

385. आदावन्ते च दौर्बल्य विसर्गादानयोनृणाम्। मध्येमध्य बलं, त्वन्ते श्रेष्ठमग्रे च निर्दिशेत्।। च.सू. 6/8

हेमन्तेशिशिरे चाग्रयं विसर्गादानयोर्बलम्। शरद्वसन्तयोर्मध्यं हीनं वर्षानिदाघयोः। अ.स.सू. 4/8

♦ शीत (हेमन्त और शिशिर) ऋतु में आहार–विहार

स्वास्थ्य की दृष्टि से शीत काल की ये दोनों ऋतुएँ मनुष्य के लिए सबसे अधिक अच्छी मानी गई है। इस समय शरीर सबसे अधिक बलयुक्त होता है।[386] दिन छोटे तथा रातें लम्बी होने के कारण शरीर को आराम करने के साथ - साथ भोजन को हजम होने के लिए भी अधिक समय मिल जाता है। इन दोनों कारणों से सर्दी में अधिक पुष्टि मिलती है तथा भूख भी अधिक लगती है। इस प्रकार पाचन-शक्ति तेज होने से भारी और अधिक मात्रा में लिया गया आहार भी आसानी से पच जाता है। अत: इस काल मे भूखा रहना और रूख-सूखा भोजन खाना हानिकारक है। पर्याप्त मात्रा में भोजन रूपी ईधन न मिलने पर पाचक-अग्नि शरीर के पोषक द्रव्यों का ही भक्षण करने लगती है। इससे शरीर में वायु दोष बढ़ जाता है जिसमें शीतल और रूक्ष गुणों की अधिकता होती है।[387]

♦ पथ्य आहार

शीत ऋतु में चिकनाई, मधुर, लवण और अम्ल (खटाई) रस युक्त तथा पोषक तत्वों वाले पदार्थो का सेवन करना चाहिए। इन पदार्थो में शुद्ध घी, मक्खन, तेल, दूध, दूध-चावल की खीर, उड़द-दूध की खीर, मिश्री, रबड़ी, मलाई, ठण्डे दूध के साथ शहद, गन्ने का रस, दलिया, हलवा, ऑवले व सेव का मुरब्बा, पिट्ठी व मेवों से बने पदार्थ मिठाई आदि उपयोगी है। अनाजों में अंकुरित चना, मूँग, उड़द, गेंहूँ या चने की रोटी, कार्नफ्लैक्स, नये चावल, मौसमी फल जैसे- सेब, ऑवला, संतरा आदि। सब्जियों में - परवल, बैगन, गोभी, जिमीकन्द, पके लाल टमाटर, गाजर, सेम, मटर, पालक, बथुआ, मेथी आदि हरे शाक, सोंठ, गर्म जल व गर्म पदार्थ स्वास्थ्य वर्धक और पोषक है।[388]

♦ पथ्य विहार

पथ्य आहार के साथ पथ्य विहार (रहन-सहन) का भी ठीक तरह से पालन करना ज़रूरी है। सबसे पहले, तो मन प्रसन्न और चिन्तारहित होना चाहिए। प्रात: काल सूर्योदय से पहले उठ कर उषापान, शौच, स्नानादि करके शुद्ध वायु सेवन के लिए भ्रमण करना चाहिए। अपनी शक्ति के अनुसार तेज़ चाल से चलना उचित है। लौट कर थोड़ा विश्राम करके व्यायाम और योगासन आदि करने चाहिए। इस ऋतु में व्यायाम का विशेष रूप से लाभ होता है और शरीर बलवान एवं

---

386. देहोष्माणो विशन्तोऽन्त: शीते शीतानिलाहता:।
जठरे पिण्डितोष्माणं प्रबलं कुर्वतेऽनलम्।। — अ.स.सू. 4/12

387. विसर्गे बलिनां प्राय: स्वाभावादिगुरु क्षमम्।
बृहणान्यन्नपानानि योजयेत् तस्य युक्तये।।
अनिन्धनोऽन्यथा सीदेदत्युदीर्णतयाऽथवा
धातूनपि पचेदस्य ततस्तेषां क्षयान्मरुत्।। — अ.स.सू. 4/13-14
तेज: सहचर: कुप्येच्छीत: शीते विशेषत:। — अ.स.सू. 4/15

388. अतो हिमे भजेत् स्निग्धान् स्वाद्वम्ल लवणान् रसान्।। — अ.स.सू. 4/17
माषेक्षुक्षीर विकृति वसा तैल नवौदनान्।

सुडौल बनता है, खाया-पिया ठीक प्रकार पच जाता है। तेल मालिश, उबटन (हल्दी का) व सिर पर तेल मलना खास उपयोगी है। सरसों के तेल की मालिश से त्वचा, सुन्दर और निरोग बनती है तथा फोड़े, फुंसियाँ नष्ट होते है। तेल मे कपूर डाल कर मालिश करने से जोड़ों का दर्द और गठिया आदि में आराम मिलता है। मालिश के बाद उबटन करना चाहिए।[389] व्यायाम तेल-मालिश के बाद भी किया जा सकता है।

इस मौसम में ठण्ड लगने से जुकाम, बुखार, निमोनिया आदि हो सकते हैं। त्वचा रूखी होती है तथा शीतल वायु से खाँसी, श्वास, गठिया जोड़ों का दर्द, खुजली आदि हो सकते है। अतः ठण्डी हवा से बच कर रहना चाहिए। अधिक ताप वाले स्थान में रहना व सोना चाहिए। भारी, गर्म कपड़ों, कम्बल, रजाई, रेशमी व ऊनी वस्त्रों को पहनना व ओढ़ना चाहिए। बिस्तर व वाहन आदि अच्छी तरह ढके होने चाहिए। शरीर पर अगरु (अगर) का चूर्ण मलना चाहिए। अग्नि और धूप सेकना लाभदायक है। धूप पीठ की ओर से तथा आग आगे की ओर से सेंकनी चाहिए। कमरा गर्म करने के लिए रूम हीटर आदि का प्रयोग किया जा सकता है। इस ऋतु मे मनचाहा मैथुन किया जा सकता है। रात को सोते समय दूध व वृष्य पदार्थों का सेवन लाभदायक है।

♦ अपथ्य आहार-विहार

शीत ऋतु मे हलके, रूखे, वायुवर्द्धक पदार्थों, कटु, तिक्त और कषाय रस वाले खाद्य एवं पेय पदार्थों, बासी तथा ठण्डे पदार्थों (आइसक्रीम व ठण्डी प्रकृति के) का सेवन नही करना चाहिए। खटाई मे इमली, अमचूर, खट्टा दही, आम के अचार आदि का सेवन कम से कम ही करना चाहिए।[390]

देर रात तक जागना, सुबह देर तक सोये रहना, आलस्य करना, श्रम और व्यायाम न करना, देर तक भूखे रहना, अधिक स्नान, बहुत ठण्ड सहना, रात को देर से भोजन करना और भोजन के तुरन्त बाद सो जाना ये सब अपथ्य विहार है, जिनसे बचकर रहना चाहिए।

जो लोग हरड़ का सेवन रसायन के रूप में करते है, उन्हें हेमन्त ऋतु में आधा चम्मच हरड़ के साथ सोंठ का चूर्ण आधा चम्मच, तथा शिशिर

---

389. व्यायामोद्वर्तनाभ्यङ्ग स्वेदधूमाञ्जनातपान्।। अ.स.सू. 4/17

सुखोदकं शौचविधौ भूमिगर्भगृहाणि च।
साङ्गारयानां श्य्यां च कुथकम्बलसंस्कृताम्।। अ.स.सू. 4/18

कुङ्कुमेनानुलिप्ताङ्गोऽगुरुणा गुरुणाऽपि वा।
लघुष्णैः प्रावृतः स्वप्यात् काले धूपाधिवासितः।। अ.स.सू. 4/19
पीनाङ्गनाङ्गसंसर्गनिवारितहिमानिलः। अ.स.सू. 4/20

शरदानि च माल्यानि वासासि विमलानि च।
शरत्काले प्रशस्यन्ते प्रदोषे चेन्दुरश्मयः।। च.सू. 6/48

390. वर्जयेदन्नपानानि वातलानि लघूनि च।
प्रवातं प्रमिताऽऽहारमुद्मन्थं हिमागमे।। च.सू. 6/18

ऋतु में पीपल (पिप्पली) का चूर्ण आधा चम्मच ताजे पानी के साथ लेना चाहिए।[391]

♦ हेमन्त और शिशिर ऋतु में अन्तर

दोनों ऋतुओं में[392] मौसम प्रायः एक सा होता है। हेमन्त ऋतु में सूर्य दक्षिणायन में होता है, अतः औषधियों एवं आहार-द्रव्यों में स्निग्धता, मधुर रस और पौष्टिकता होती है। इस ऋतु में शरीर में किसी भी दोष का संचय नहीं होता परन्तु शिशिर ऋतु में सूर्य के उत्तरायण में होने से आदान काल के कारण वातावरण में रूक्षता और शीतलता होती है। वनस्पतियों में भी शीतलता, भारीपन और मधुरता होने से शरीर में कफ का संचय होता है। अतः शिशिर ऋतु में भी उपर्युक्त आहार-विहार का पालन करते हुए ठण्ड से अधिक बचाव रखना चाहिए तथा अधिक गर्म स्थान में रहना चाहिए। शीतल, हलके और रूक्ष पदार्थों का सेवन एवं उपवास नहीं करना चाहिए।

उपर्युक्त पथ्य-अपथ्य आहार-विहार का पालन करते हुए शीतऋतु में इतनी शक्ति एकत्र की जा सकती है कि इसके बल पर अन्य ऋतुओं में भी रोगों का मुकाबला (प्रतिकार) किया जा सके।

♦ वसन्त ऋतु में आहार-विहार

वसन्त ऋतु सब ऋतुओं से सुहानी होती है। इसमें सब जगह प्रकृति की सुन्दरता दिखाई देती है। रंग बिरंगे फूलों की सुन्दरता और सुगन्धि से ऐसा लगता है मानो प्रकृति प्रसन्न मुद्रा में है। यह ऋतु शीतकाल और ग्रीष्म काल का सन्धि समय होता है। मौसम समशीतोष्ण होता है अर्थात् न तो कँपकँपाती सर्दी होती है और न ही कड़ाके की धूप या गर्मी ही। मौसम मिला-जुला होता है, दिन में गर्मी और रात में सर्दी होती है।[393]

♦ शरीर पर प्रभाव

इस ऋतु में सूर्य की किरणें तेज होने लगती हैं। शीत काल (हेमन्त और शिशिर ऋतुओं) में शरीर के अन्दर जो कफ जमा हो जाता है, वह इन किरणों की गर्मी से पिघलने लगता है। इससे शरीर में कफ दोष कुपित हो जाता है और कफ से होने वाले रोग (जैसे- खाँसी, जुकाम, नज़ला,

---

391. हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी।
कदाचित् कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी।। — भा.प्र.
ग्रीष्मे तुल्यगुडामं सुसैंध्वयुवां मेधावनद्धाम्बरे।
सार्धं शर्करया शरधमलया शुण्ठया तुषारागमे।।
पिप्पल्या शिशिरे बसन्तससये क्षौद्रेण संयोजितां।
राजन् प्राप्य हरीतकीमिप रुजो नश्यन्तु ते शत्रवः।। — भा.वि.नि.

392. शिशिरे शीतमधिकं मेधमारुतवर्षजम्।। — अ.स.सू. 4/20
रौक्ष्यं चादानजं तस्मात् कार्यः पूर्वोऽधिकं विधिः। — अ.स.सू. 4/21

393. बसन्ते दक्षिणो वायुराताम्रकिरणो रविः।।
नव प्रवालत्वक्पत्राः पादपाः ककुभोऽमलाः। — अ.स.सू. 4/22
किंशुकाशोकचूतादिवनराजिविराजिताः।। — अ.स.सू. 4/23
कोकिलालिकुलालापकलकोलाहलाकुलाः।

दमा गले की खराश, टॉसिल्स, पाचन-शक्ति की कमी, जी-मिचलाना आदि) उत्पन्न हो जाते हैं। वातावरण में सूर्य का बल बढ़ने और चन्द्रमा की शीतलता कम होने से जलीय अंश और चिकनाई कम होने लगती है। इसका प्रभाव शरीर पर पड़ता है और दुर्बलता आने लगती है। अत: इस ऋतु में खान-पान का विशेष ध्यान रखना चाहिए। अम्ल, मधुर और लवण रस वाले पदार्थ खाने से कफ में वृद्धि होती है।[394]

♦ पथ्य आहार–विहार

इस ऋतु में ताजा हलका और सुपाच्य भोजन करना चाहिए। कटु रसयुक्त तीक्ष्ण और कषाय पदार्थों का सेवन लाभकारी है। मूँग, चना और जौ की रोटी, पुराना गेहूँ और चावल, जौ, चना, राई, भीगा व अंकुरित चना, मक्खन लगी रोटी डबलरोटी, हरी शाक-सब्जी एवं उनका सूप, सरसों का तेल, सब्जियों में- करेला, लहसुन, पालक, केले के फूल, जिमीकन्द व कच्ची मूली, नीम की नई कोपलें, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, हरड़, बहेड़ा, आँवला, धान की खील, खस का जल, नींबू, मौसमी फल तथा शहद का प्रयोग बहुत लाभकारी है। जल अधिक मात्रा में पीना चाहिए। अदरक डाल कर तथा शहद मिलाकर जल तथा वर्षा का जल पीना चाहिए।[395] कफ को कम करने के लिए वमन (गुनगुना जल पीकर गले में अंगुली डालकर उलटी करना) हरड़ के चूर्ण का सेवन शहद के साथ मिला कर करना उपयोगी है।

नियमित रूप से हलका व्यायाम अथवा योगासन करने चाहिए। सूर्योदय से पहले भ्रमण करने से स्वास्थ्य में वृद्धि होती है। तैल मालिश करके तथा उबटन लगा कर गुनगुने पानी से (आदत होने पर ठण्डे ताज़े पानी से) स्नान करना हितकारी है। औषधियों से तैयार धूम्रपान तथा आँखों में अंजन का प्रयोग करना, स्नान करते समय मलविसर्जक अंगों (मूत्राशय, मलाशय आदि) की सफाई ठीक प्रकार से करनी चाहिए। सिर पर टोपी व छाते का प्रयोग करने से धूप से बचा जा सकता है।[396] स्नान के बाद शरीर

---

394. शिशिरे सञ्चित: श्लेष्मा दिनकृद्भाभिरीरित:।। — अ.स.सू. 4/23
तदा प्रबाधमानोऽग्निं रोगान् प्रकुरुते बहून्। — अ.स.सू. 4/24

395. अतोऽस्मिंस्तीक्ष्ण वमन धूम गण्डूषनावनम्।। — अ.स.सू. 4/24
व्यायामोद्वर्तन क्षौद्रयवगोधूमजाङ्गलान्।
सेवेत सुहृदुद्यानयुवतीश्च मनोरमा:।। — अ.स.सू. 4/25
स्नात: स्वलंङ्कृत: स्रग्वी चन्दनागुरुरुषित:।
विचित्रामत्रविन्यस्तान् सहकारोत्पलाङ्कितान्।। — 26
निर्गदांश्चासवारिष्ट सीधुमार्द्वीकमाधवान्।
क्वथितं मुस्तशुठयम्बु साराम्भ: क्षौद्रवारि वा।
गुरुशीतदिवास्वप्न स्निग्धाम्लमधुरांस्त्यजेत्। — अ.स.सू. 4

396. ईते: प्रशमनं बल्यं गुप्त्यावरणशङ्करम्।
धर्मानिलरजोऽम्बुघ्नं छत्रधारणमुच्यते।। — च.सू. 5/101

पर कपूर, चन्दन, अगरू (अगर) कुमकुम आदि सुगन्धित पदार्थो का लेप लाभकारी है।[397] बाग-बगीचों (जहाँ सर्वत्र प्राकृतिक सुन्दरता बिखरी होती है) स्त्री के साथ भ्रमण करने से मन व शरीर प्रसन्न रहते हैं। इस ऋतु में सांय समय दुबारा स्नान किया जा सकता है।

♦ अपथ्य आहार–विहार

बसन्त ऋतु में भारी, चिकनाई युक्त, खट्टे (इमली, अमचूर्ण) व मीठे (गुड़, शक्कर) एवं शीत प्रकृति वाले पदार्थो का सेवन नहीं करना चाहिए। नया अनाज, उड़द, रबड़ी, मलाई जैसे भारी भोज्य पदार्थ व खजूर का सेवन भी ठीक नहीं है। खुले आसमान में नीचे ओस में सोना, ठण्ड में रहना, धूप में घूमना तथा दिन में सोना भी हानिकारक है।[398]

♦ ग्रीष्म ऋतु में आहार–विहार

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की तेज़ और उष्ण किरणें पृथ्वी का सारा जलीय अंश और चिकनाई सोख लेती है। पृथ्वी का तापमान एकदम बढ़ जाता है और सब जगह ताप ही ताप अनुभव होता है। इससे सारा वातावरण रूखा और नीरस दिखाई देता है। यह आदान काल की चरम सीमा होती है। समय की गर्मी और लू का प्रभाव प्राणियों पर ही नहीं, अपितु पेड़-पौधों आदि वनस्पति जगत् और यहाँ तक कि नदी, कुएँ, तालाब आदि पर भी पड़ता है।[399]

♦ शरीर पर प्रभाव

शरीर के स्वस्थ, बलशाली और सुडौल बनाये रखने के लिए स्निग्धता (चिकनाई) और सौम्यता की आवश्यकता होती है। चूंकि इस ऋतु में इन दोनों का अभाव होता है, अतः शरीर भी वनस्पतियों की तरह सूखने लगता है। शरीर के रस, रक्त आदि सातों धातु क्षीण होने लगते हैं। अतः दुर्बलता आ जाती है। पसीना अधिक मात्रा में आता है। प्यास अधिक लगती है। बहुत अधिक जल पीने से आँतों में पाया जाने वाला एसिड जल में घुल कर कम हो जाता है। इससे

---

397. कुङ्कुमेनानुलिप्ताङ्गोऽगुरुणा गुरुणाऽपि वा। — अ.स.सू. 4/19

398. गुरु शीत दिवा स्वप्न स्निग्धाम्ल मधुरांस्त्यजेत्।। — अ.स.सू. 4/28

399. "तत्र रविर्भाभिराददानो जगतः स्नेहं वायवस्तीव्ररूक्षाश्चोपशोषयन्तः शिशिरवसन्तग्रीष्मेषु यथाक्रमं रौक्ष्यं उत्पादयन्तो रूक्षान् रसांस्तिक्तकषायकटुकाश्चाभिवर्धयन्तो नृणां दौर्बल्यमावहन्ति।।" — च.सू. 6/6

- "ता एवौषधयो निदाहे निस्सारा रूक्षा अतिमात्रं लघ्व्यो भवन्त्यापश्च, ता उपयुज्यमानाः सूर्यप्रतापोपशोषितदेहानां देहिनां रौक्ष्याल्लघुत्वाद्वैशद्याच्च वायोः सञ्चयमापादयन्ति।।" — सु.सू. 6/13

- "ग्रीष्मे तीक्ष्णांशुरादित्यो मारुतोनैऋतोऽसुखः भूस्तप्ता सरितस्तन्व्यो दिशः प्रज्वलिता इव।।" — सु.सू. 6/31

दिशो ज्वलन्ति भूमिश्च मारुतो नैर्ऋतः सुखः। पवनातपसंस्वेदैर्जन्तवो ज्वरिता इव।। — अ.स.सू. 4/29

जीवाणुओं का संक्रमण शीघ्र होता है और वमन (उलटी) अतिसार (दस्त) पेचिश आदि रोगों का आक्रमण होने की सम्भावना रहती है। शरीर में पित्त दोष का प्रकोप होने से अत्यधिक प्यास, ज्वर, जलन, रक्तपित्त (नाक आदि अंगों से रक्तस्राव), चक्कर, सिर दर्द आदि रोग भी हो सकते है। इन सब रोगों व दुर्बलता आदि से बचने के लिए आयुर्वेद ने इस ऋतु में निम्नलिखित आहार-विहार का निर्देश किया है:

♦ पथ्य आहार–विहार[400]

ग्रीष्म ऋतु में हलका, चिकना, मधुर रस युक्त, सुपाच्य, शीतल और तरल पदार्थो का सेवन अधिक मात्रा में करना चाहिए। जल को उबालकर घड़े या फ्रिज में ठण्डा करके पीना चाहिए। चीनी, घी, दूध, मट्ठे (ताज़े जमे दही में थोड़ा पानी मिलाकर) में चीनी या पिसा जीरा, थोड़ा नमक मिलाकर (केवल प्रात: और दोपहर के भोजन में, रात में नहीं) पुराने जौ, अरहर, सब्जियों में - चौलाई, करेला, बथुआ, परवल, पके टमाटर, छिलके सहित आलू, कच्चे केले की सब्जी, सहजन की फली, प्याज, सफेद पेठा, पुदीना, नीबू आदि; दालों में छिलका रहित मूँग, अरहर और मसूर की दाल; फलों में - तरबूज, मीठा खरबूजा, मीठा आम, सन्तरा और अंगूर, हरी पतली ककड़ी, शहतूत, फालसा, अनार, आँवले का मुरब्बा; सूखे मेवों में - किशमिश, मुनक्का, चिरौंजी, पिण्ड खजूर तरल पदार्थो में- नीबू की मीठी शिकंजी, कच्चे आम का पानी, चीनी का शर्बत, मीठे दही की लस्सी, बेल का शर्बत, मीठा पतला सत्तू, ठण्डाई, चन्दन, खसखस, गुलाब का शर्बत, गन्ने, सेब और मीठे सन्तरे का रस, पाटला के फूलों से सुगन्धित और कपूर से ठण्डा किया जल, नारियल का पानी, मिश्री व घी मिला दूध, भैंस का दूध, रायता, चन्द्रमा की किरणों में ठण्डा किया जल, आइस्क्रीम जैसे पदार्थ लाभकारी है। अरहर की दाल खुश्क होती है अत: उसमें घी और जीरे का छौंक लगा लेना चाहिए। रसायन के रूप में हरड़ का सेवन समान मात्रा में गुड़ मिला कर करना चाहिए। इस ऋतु में भोजन कम मात्रा में और खूब चबा-चबा कर खाना बहुत ज़रूरी है। भोजन ताज़ा और गरम

---

400. ''मयूखैर्जगत: स्नेहं ग्रीष्मे पेपीयते रवि:।
स्वादुशीतं द्रवं स्निग्धं अन्नपानं तदा हितम्।
शीतं सशर्करं मन्थं जागंलान्मृगपक्षिण:।
घृतं पय: सशाल्यन्नं भजन् ग्रीष्मे न सीदति।।'' — च.सू. 27-28
आदत्ते जगत: स्नेहांस्तदादित्यो भृशं यत:।
व्यायामातप कट्वम्ललवणोष्णं त्यजेदत:।। — अ.सं.सू. 4/32
मद्यं न सेव्यं स्वल्पं वा सेव्यं सुबहु वारि वा।
अन्यथा शोषशैथिल्यदाहमोहान् करोति तत्।। — अ.सं.सू. 4/33
नव मृद्भाजनस्थानि हृद्यानि सुरभीणि च।
पानकानि समन्थानि सिताढ्यानि हिमानि च।। — अ.सं.सू. 4/34
स्वादुशीतं द्रवं चान्नं जाङ्गलान्मृगपक्षिण:।
शालिक्षीर घृत द्राक्षा नारिकेराम्बुशर्करा:।। — अ.सं.सू. 4/35

लेना चाहिए। ठण्डा होने के बाद फिर गर्म करके खाना या फ्रिज में रखे व्यंजन को खाते समय गरम करके खाना ठीक नहीं। फ्रिज में देर तक रखे खाद्य पदार्थ का सेवन करना हानिकारक है। फ्रिज की अपेक्षा घड़े या सुराही में ठण्डा किया हुआ जल पीना चाहिए।

इस ऋतु में वृक्षों से भरे बाग-बगीचों में भ्रमण करना स्वास्थ्य वर्धक होता है क्योंकि इनमें सूर्य की किरणें सीधी धरती पर नहीं पहुँच पातीं, अतः अधिक गर्म नहीं होती। रहने का स्थान, विशेषकर शयन कक्ष पानी के फव्वारे, पंखों, कूलर आदि से ठण्डा किया जा सकता है। रात के समय ऐसे स्थान पर सोना चाहिए जहाँ वातावरण ताज़ी हवा और चन्द्रमा की किरणों से ठण्डा हो। आराम कुर्सी आदि पर बैठ कर ठण्डी हवा का सेवन करना चाहिए। शरीर पर चन्दन का लेप करना चाहिए और मोतियों के आभूषण पहनने चाहिए। बिस्तर पर केले, कल्हार, मृणाल तथा कमल आदि के पत्ते बिछाने चाहिए। सूती व सफेद या हलके रंग के वस्त्र पहनने चाहिए।[401] बाहर धूप में घूमना नहीं चाहिए। यदि जाना ही पड़े तो पैरों में अच्छे जूते पहन कर, सिर ढक कर या छाता लेकर जाना चाहिए। घर से निकलते समय एक गिलास ठण्डा पानी अवश्य पी लेना चाहिए। एक साबुत प्याज साथ में रख लेना चाहिए। इन साधनों से लू नहीं लगती। रात को 10 बजे के बाद तक जागना हो, तो बीच-बीच में एक गिलास ठण्डा पानी अवश्य पीते रहना चाहिए। इससे वायु और कफ दोष कुपित नहीं होते और क़ब्ज़ भी नहीं होता।[402]

रात का भोजन विशेष रूप से हलका और सुपाच्य होना चाहिए। यदि हो सके तो इस समय सप्ताह में एक-दो बार खिचड़ी का सेवन अच्छा रहता है। रात का भोजन जितना जल्दी हो सके कर लेना चाहिए। इस ऋतु में दिन के समय थोड़ा सोया जा सकता है।

---

401. ''दिवा शीतगृहे निद्रां निशि चन्द्रांशुशीतले।
भजेच्चन्दनदिग्धाङ्गः प्रवाते हर्म्यमस्तके।।
व्यजनैः पाणिसंस्पर्शैश्चन्दनोदकशीतलैः।
सेव्यमानो भजेदास्यं मुक्तामणिविभुषितः।।
काननानि च शीतानि जलानि कुसुमानि च।
तालवृन्तानिलान् हारान् स्त्रजः सकमलोत्पलाः।
तन्वीमृणाल वलयाः कान्ताश्चन्दरूषिताः। — च.सू. 6/30-32
सरांसि वापीः सरितः काननानि हिमानि च।
सुरभीणि निषेवेत वासांसि सुलघूनि च।। — अ.स.सू. 4/36-37
निष्पतद् यन्त्रसलिले स्वप्यादधारागृहे दिवा।
रात्रौ चाकाशतलके सुगन्धिकुसुमास्तृते।। — अ.स.सू. 4/38

402. ''मद्यमल्पं न वा पेयमथवा सुबहूदकम्।
लवणाम्लकटुष्णानि व्यायामं चात्र वर्जयेत्।।'' — च.सू. 6/29
कपूर्रचन्दनार्द्राङ्गो विरलानङ्गसंङ्गमः। — अ.स.सू. 4/39

♦ अपथ्य आहार–विहार

ग्रीष्म ऋतु में उष्ण प्रकृति के, खट्टे (अमचूर, इमली आदि) कटु लवण, रूखे और कसैले पदार्थो का सेवन कम से कम मात्रा में करना चाहिए। भारी, तले हुए, तेज़ मिर्च-मसालेदार, बासी, लाल मिर्च वाले पदार्थो, उड़द की दाल, लहसुन, सरसों, खट्टी दही, शहद, बैंगन, बर्फ आदि का सेवन बिल्कुल नहीं करना चाहिए। (शहद को औषधि के अनुपान के रूप में लिया जा सकता है।) बाजार में बिकने वाली चाट-चटनी आदि खट्टे पदार्थो, खोये के व्यंजनों और उड़द की पिट्ठी से बने पदार्थ भी हानिकारक हैं। एक बार में अधिक मात्रा में जल नहीं पीना चाहिए! इससे पाचक-अग्नि दुर्बल होती है। कुछ-कुछ समय बाद एक-एक गिलास करके जल पीना लाभकारी है। विरुद्ध आहार का सेवन नहीं करना चाहिए। एक दम ठण्डे वातावरण से निकल कर धूप में जाना और धूप से आ कर एकदम पानी नहीं पीना चाहिए। थोड़ा रुक कर पसीना सूख जाने के बाद और शरीर का तापमान सामान्य होने पर ही जल आदि पीना चाहिए। फ्रिज के पानी में सादा पानी मिला लेना चाहिए। मद्य-पदार्थो का सेवन तो इस ऋतु में बिल्कुल नहीं करना चाहिए। जो इसके बिना नहीं रह सकते उन्हें इसमें पर्याप्त मात्रा में जल मिला लेना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु में निम्नलिखित आचार-व्यवहार से भी बच कर रहना चाहिए :- रात को अधिक देर तक जागना (क्योंकि इस समय रातें वैसे ही छोटी होती हैं), दिन के समय धूप में अधिक घूमना, धूप में नंगे सिर घूमना, अधिक समय तक भूखे-प्यासे रहना, अधिक समय तक तथा अधिक मात्रा में व्यायाम करना, मल-मूत्र के वेग को रोकना, स्त्री-सहवास (मैथुन क्रिया) करना। (आयुर्वेद के अनुसार तो बिल्कुल नहीं करना चाहिए, परन्तु आजकल के वातावरण में संयम न हो सके, तो बहुत कम- पन्द्रह दिन में एक बार- किया जा सकता है।)[403]

♦ वर्षा ऋतु में आहार–विहार

वर्षा ऋतु विसर्ग काल के आरम्भ में आती है। इस समय आकाश और दिशाएँ बादलों से युक्त होती है। वातावरण में हरियाली के साथ-साथ नमी और रूक्षता भरी होती है। नमी के कारण मच्छर-मक्खी आदि जन्तुओं से गन्दगी बढ़ जाती है।

♦ शरीर पर प्रभाव

वातावरण की नमी का प्रभाव शरीर पर भी पड़ता है। ग्रीष्म ऋतु में पाचन-शक्ति पहले से ही दुर्बल होती है। वर्षा ऋतु की नमी से वात दोष कुपित हो जाता है और पाचन-शक्ति अधिक दुर्बल हो जाती है।[404] वर्षा की बौछारों

---

403. ''ग्रीष्मकाले निषेवेत् मैथुनाद् विरतोनरः।'' — च.सू. 6/32
कर्पूरचन्दनार्द्राङ्गो विरलानङ्गसङ्गमः। — अ.स.सू. 4/39

404. ''आदानदुर्बले देहे पक्ता भवति दुर्बलः।
स वर्षास्वनिलादीनां दूषणैर्बाध्यते पुनः।।'' — च.सू. 6/33
तदाऽऽदानाबले देहे मन्देऽग्नौ
बाधिते पुनः।।

से पृथ्वी से निकलने वाली गैस, अम्लता की अधिकता, धूल और धुएँ से युक्त वायु का प्रभाव भी पाचन-शक्ति पर पड़ता है। बीच-बीच में बारिश न होने से सूर्य की गर्मी बढ़ जाती है। इससे शरीर में पित्त दोष जमा होने लगता है।[405] गेहूँ, चावल आदि वनस्पतियों की शक्ति भी कम हो जाती है।

इन सब कारणों से व संक्रमण से मलेरिया और फाइलेरिया बुखार, जुकाम, दस्त (आम से युक्त), पेचिश, हैजा, आन्त्रशोथ (colitis), अलसक, गठिया, सन्धियों में सूजन, उच्च रक्तचाप, फुंसियाँ, दाद, खुजली आदि अनेक रोग आक्रमण कर सकते हैं।

♦ पथ्य आहार–विहार

वर्षा ऋतु में हलके, सुपाच्य, ताज़े, गर्म और पाचक अग्नि को बढ़ाने वाले खाद्य-पदार्थों का सेवन हितकारक है। ऐसे पदार्थ लेने चाहिए, जो वायु को शान्त करने वाले हों। इस दृष्टि से पुराना अनाज जैसे गेहूँ, जौ, शालि और साठी चावल, मक्का (भुट्टा), सरसों, राई, खीरा, खिचड़ी, दही, मट्ठा, मूँग और अरहर की दाल, सब्जियों में - लौकी, भिण्डी, तोरई, टमाटर और पोदीना[406] की चटनी, सब्जियों का सूप, फलों में - सेब, केला, अनार, नाशपाती, पके जामुन और पके देशी आम तथा घी व तेल से बने नमकीन पदार्थ उपयोगी रहते हैं। आम और दूध का सेवन विशेष रूप से लाभकारी है।[407] आम पका, मीठा और ताज़ा ही होना चाहिए। कच्चा, खट्टा और पाल से उतरा हुआ आम लाभ के स्थान पर हानि करता है। पके आम को चूस कर ऊपर से दूध पीने से शरीर पुष्ट होता हैं। यदि एक समय भोजन के स्थान पर आम और दूध का उचित मात्रा में सेवन किया जाए, तो शरीर में ताक़त, सुडौल और पुष्टि आती है। इसी प्रकार पके (बिना दाग वाले) और गूदेदार थोड़े जामुनों का नियमित रूप से सेवन करने से त्वचा के रोग, फोड़े-फुंसियां जलन और प्रमेह रोगों में लाभ

---

405. ''नभसि मेघावतते जलप्रक्लिन्नायां भूमौ मिलन्नदेहानां प्राणिनां
शीतवातविष्टम्भितागनीनां विदह्यन्ते, विदाहात् पित्तसञ्चयमापादयन्ति।।'' सु.सू. 6/11
वृष्टिभूबाष्पतोयाम्लपाक दुष्टैश्चलादिभिः। अ.स.सू. 4/43

406. ''पानभोजनसंस्कारान् प्रायः क्षौद्रान्वितान् भजेत्।।
व्यक्ताम्ललवणस्नेहं वातवर्षाकुलेऽहनि।
विशेषशीते भोक्तव्यं वर्षास्वनिलशान्तये।।
अग्निसंरक्षणवताम् यवगोधूमशालयः।
पुराणा जाङ्गलैर्मांसैर्भोज्या यूषैश्च संस्कृतैः।।'' च.सू. 6/37-38

407. ''पितानिलकरं बालं पित्तलं बद्धकेसरम्।
हृद्यं वर्णकरं रूच्यं रक्तमासंबलप्रदम्।।
कषायानुरसं स्वादु वातघ्नं बृंहणं गुरु।
पित्ताविरोधि सपंक्वाम्रम् शुक्रविवर्धनं।।'' सु.सू. 46/152-153
''आम्रस्य पल्लवोरूच्यः कफपित्तविनाशम्। भा.प्र. 18

होता है।[408] भुट्टा खाने के बाद छाछ पीने से वह अच्छी तरह पच जाता है। दही की लस्सी में लौंग, त्रिकटु (सोंठ पिप्पली और काली मिर्च),सेंधा नमक, अजवायन, काला नमक आदि डाल कर पीने से पाचन-शक्ति ठीक रहती है। लहसुन की चटनी व शहद को जल एवं अन्य पदार्थो (जो गर्म न हों) में मिला कर लेना उपयोगी है। इस मौसम में वायु और कफ दोषों को शान्त करने के लिए कटु, अम्ल और क्षार पदार्थ लेने चाहिए। अम्ल, नमकीन और चिकनाई वाले पदार्थो का सेवन करने से वायु दोष के शान्त होने में सहायता मिलती है, विशेष रूप से उस समय जब अधिक वर्षा और आँधी से मौसम ठण्डा हो गया हो। रसायन रूप में हरड़ का चूर्ण सेन्धा नमक मिला कर लेना चहिए।

इस ऋतु में जल की शुद्धि का खास ध्यान रखना चाहिए। वर्षा का शुद्ध जल या तालाब, नदी अथवा कुंएँ के जल को उबाल कर ठण्डा करके पीना चाहिए। जल में तुलसी के कुछ पत्ते और फिटकरी (चावल के दाने के बराबर) पीस कर मिलाने से भी शुद्ध हो जाता है। आजकल एक्वागार्ड, फिल्टर आदि साधनों से भी जल शुद्ध कर लिया जाता है। यदि इस ठण्डे जल में शहद मिला लिया जाए तो और अच्छा है।[409] शरीर पर उबटन मलना, मालिश और सिकाई करना लाभदायक है। वस्त्र साफ-सुथरे और हलके पहनने चाहिए।[410] भीगने पर तुरन्त वस्त्र बदल लेना चाहिए। ऐसे स्थान पर सोना चाहिए, जहाँ अधिक हवा और नमी न हो। भोजन भूख लगने पर और ठीक समय पर ही करना चाहिए। रात्रि को भोजन जल्दी कर लेना चाहिए। मच्छरों आदि से बचने के लिए मच्छरदानी का प्रयोग करना चाहिए। घर के आस-पास के गड्ढों में जमा हुए और सड़ रहे पानी में मच्छर, मक्खियाँ आदि कीड़े बहुत आते व रोग फैलाते है अतः उनमें कीटनाशक छिड़क देना चाहिए। सफाई का खास ध्यान रखना आवश्यक है।[411]

♦ अपथ्य आहार–विहार

वर्षा ऋतु में पत्ते वाली सब्जियाँ, ठण्डे व रूखे पदार्थ, चना, मोंठ, उड़द, जौ, मटर, मसूर, ज्वार, आलू, कटहल, सिंघाड़ा, करेला और पानी में

---

408. "ग्राही कषायस्तन्मज्जा विशेषान्मधुमेहहा।" — मूल - फलवर्ग (नि.र.)
"जम्बू कषायमधुरा श्रमपित्तदाहकंठार्तिशोषशमनी क्रिमिदोषहन्त्री।
श्वासातिसारकफकासविनाशिनी च विष्टम्भिनी भवति रोचनपाचनी च।।" — रा.नि.

409. "पिबेत् क्षौद्रान्वितं चाल्पं माध्वीकारिष्टमम्बु वा।
माहेन्द्रं तप्तशीतं वा कौपं सारसमेव वा।।" — च.सू. 6/39

410. "प्रघर्षोद्वर्तन स्नानगन्धमाल्यपरो भवेत्।
लघुशुद्धाम्बरः स्थानं भजेदक्लेदि वार्षिकम्।।" — च.सू. 6/40
प्रघर्षोद्वर्तनस्नानधूमगन्धागुरुप्रियः
यायात्करेणु मुख्या भिश्चित्र स्त्रग्वस्त्रभूषितः।। — अ.स.सू. 4/48

411. नदीजलोदमन्थाहः स्वप्नातिद्रवमैथुनम्।
तुषारपादचरण व्यायामार्ककरौंस्त्यजेत्।। — अ.स.सू. 4/49

सत्तू घोलकर लेना हानिकारक है। वर्षा ऋतु में जब वर्षा बहुत कम होती है, तो पित्त का प्रकोप होने लगता है। इस समय खट्टे, तले हुए, बेसन से बने पदार्थ, तेज-मिर्च मसाले वाले, बासे खाद्य-पदार्थो और पित्त बढ़ाने वाले खाद्यों का सेवन नहीं करना चाहिए। एक लोकोक्ति के अनुसार श्रावण मास में दूध, भाद्रपद में छाछ, क्वॉर मास में करेला और कार्तिक मास में दही का सेवन बिल्कुल नहीं करना चाहिए। दिन में सोना, धूप में घूमना व सोना, अधिक मैथुन, अधिक पैदल चलना एवं शारीरिक व्यायाम भी हानिप्रद है।[412] भारी भोजन, बार-बार भोजन करना और भूख न होने पर भी भोजन करने से बचना चाहिए। रात के समय दही और मट्ठा तो बिल्कुल नहीं लेना चहिए। गीले, नमीयुक्त वस्त्रों और बिस्तर का प्रयोग नहीं करना चाहिए। शरीर के जोड़ों, विशेषकर जांघों के जोड़ और गुप्त अंगों के आस-पास की चमड़ी को पानी या पसीने से गीला होने से बचाये रखना चाहिए। फल, सब्जी आदि खाद्य-पदार्थो को अच्छी तरह धोये बिना नहीं खाना चाहिए। नदी, तालाब आदि के अशुद्ध जल को तथा सब जगह का पानी नहीं पीना चाहिए। जब बादल छाये हों, तब दस्त वाली दवाई का सेवन नहीं करना चाहिए। इस ऋतु में फिसलन होने के कारण साइकिल, स्कूटर, कार आदि वाहन तेज़ गति से नही चलाने चाहिए।

शरीर में घमौरियाँ निकलने पर बर्फ का टुकड़ा मल कर लगाना चाहिए अथवा अन्य अनुकूल औषधि का प्रयोग करना चाहिए।

इन सब उपर्युक्त तथ्य और अपथ्य आहार-विहार को व्यवहार में लाकर मनुष्य स्वस्थ रह कर वर्षा ऋतु का पूरा मज़ा ले सकता है।

♦ शरद् ऋतु में आहार–विहार

शरद् ऋतु में बादल बहुत स्वच्छ और सुन्दर हो जाते हैं। चन्द्रमा की किरणें अधिक प्रभावशाली, स्वच्छ और स्निग्ध हो जाती है और मन को आनन्द प्रदान करती है। नदियों, झीलों और तालाबों का जल चाँदनी के प्रभाव से स्वच्छ हो जाता है। वनस्पतियों, औषधियों आदि में अम्ल रस की अधिकता पाई जाती है।[413]

♦ शरीर पर प्रभाव

वर्षा ऋतु में शरीर को वर्षा और उसकी शीतलता सहन करने का अभ्यास हो जाता है। वर्षा के बाद शरद् ऋतु में सूर्य अपने पूरे तेज उष्मा तथा गर्मी के साथ चमकता है। इस उष्णता के फलस्वरूप वर्षा ऋतु के दौरान शरीर में जमा हुआ पित्त दोष एकदम कुपित हो जाता है।[414]

---

412. "उदमन्थं दिवास्वप्नं अवश्यायं नदीजलम्।
व्यायाममातपं चैव व्यवायं चात्र वर्जयेत्।।" — च.सू. 6/35-36

413. शरदि व्योम शुभ्राभ्रं किञ्चित् पटटिता मही।
प्रकाशकाशसप्ताह्वकुमुदा शालिशालिनी।। — अ.स.सू. 4/50
तप्तानां संञ्चितं पूर्व तदा पित्तं प्रकुप्यति।। — अ.स.सू. 4/53

414. "वर्षाशीतोचिताङ्गनां सहसैवार्करश्मिभिः।
तप्तानामाचितं पित्तं प्रायः शरदि कुप्यति।।" — च.सू. 6/41

इससे रक्त दूषित हो जाता है। परिणामस्वरूप, पित्त और रक्त के रोग, जैसे- बुखार, फोड़े-फुंसियाँ, त्वचा पर चकत्ते, गण्डमाला, खुजली आदि विकार अधिक उत्पन्न होते हैं। विसर्ग काल का मध्य होने से शरीर में भी मध्यम प्रकार का बल पाया जाता है।

♦ पथ्य आहार–विहार

कुपित पित्त को शान्त करने के लिए घी और तिक्त पदार्थों का सेवन करना चाहिए।[415] इस दृष्टि से मीठे, हलके, सुपाच्य, शीतल और तिक्त रस वाले खाद्य और पेय पदार्थ विशेष रूप से उपयोगी हैं। शालि चावल, मूँग, गेंहूँ, जौ, उबाला हुआ दूध, दही, मक्खन, घी, मलाई, श्रीखड; सब्जियों में- चौलाई, बथुआ, लौकी, तोरई, फूलगोभी, मूली, पालक, सोया, ऑवला और सेम; फलों में - अनार, सिंघाड़ा, मुनक्का और कमलगट्टा लाभकारी है। ऑवले को शक्कर के साथ खाना चाहिए। तिक्त पदार्थों के साथ घृत को पका कर प्रयोग में लाना चाहिए। इस ऋतु में जल को दिन के समय सूर्य की किरणों में तथा रात्रि को चन्द्रमा की किरणों में रख कर प्रयोग में लाना चाहिए। यही जल इस समय अगस्त्य तारे के प्रभाव से पूरी तरह विष के प्रभाव से रहित हो जाता है और सब दृष्टि से बहुत उपयोगी होता है इसलिए अमृत के समान माना जाता है। पीने के अतिरिक्त स्नान और तैरने के लिए भी इसी जल का उपयोग करना हितकर है।[416] आचार्य चरक ने इस जल को हंसोदक कहा है। इस ऋतु में हरड़ के चूर्ण का सेवन शहद, मिश्री या गुड़ मिलाकर करना चाहिए।

कुपित पित्त और दूष्णित रक्त को शान्त करने के लिए विरेचन (दस्तावर औषधि) का प्रयोग और 'रक्त-मोक्षण' (दूषित रक्त को निकालना) वाली चिकित्सा करनी चाहिए।[417-418] इससे उपर्युक्त रोगों से बचा जा सकता है। इस ऋतु में खिलने

---

415. "तन्नान्नपानं मधुरं लघुशीतं सतिक्तकम्।
पित्तप्रशमनं सेव्यं मात्रया सुप्रकाङ्क्षितैः।।"
"शालीन् सयवगोधूमान् सेव्यानाहुर्घनात्यये।" — च.सू. 6/42
शीतं लध्वन्नपानं च कषायस्वादुतिक्तम्
शालि षष्टिकगोधूमयवमुद्गसितामधु। — अ.स.सू. 4/55

416. "दिवासूर्यांशुसन्तप्तं निशि चन्द्रांशुशीतलम्।
कालेन पक्वं निर्दोषं अगस्त्येनाविषीकृतम्।।
हंसोदकमिति ख्यातं शारदं विमलं शुचि।
स्नानपानावगाहेषु शस्यते तद्यथाऽमृतम्।।
शारदानि च माल्यानि वासांसि विमलानि च।
शरत्काले प्रशस्यन्ते प्रदोषे चेन्दुरश्मयः।।" — च.सू. 6/46-48

417. सेवेत् चन्द्रकिरणान् प्रदोषं सौघमाश्रितः।
तृप्तिदध्यातपक्षारवसातैलपुरोऽनिलान्।। — अ.स.सू. 4/59

418. "तिक्तस्य सर्पिषः पानं विरेको रक्तमोक्षणम्।" — च.सू. 6/42
शस्तं तिक्तहविः पानं विरेकोऽस्रस्रुतिः सदा।
शीतं लध्वन्नपानं च कषायस्वादुतिक्तकम्।। — अ.स.सू. 4/54

वाले फूलों को आभूषणों के रूप में प्रयोग में लाना चाहिए। रात्रि के समय चन्द्रमा की किरणों में बैठने, घूमने या सोने से स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

♦ अपथ्य आहार–विहार

शरद् ऋतु में चिकनाई वाले पदार्थ, तेल, (सरसों का) मट्ठा, सौंफ, लहसुन, बैंगन, करेला, हींग, काली मिर्च, पीपल, उड़द से बने भारी खाद्य पदार्थ, कढ़ी जैसे खट्टे पदार्थ, क्षार द्रव्य, तेज मादक द्रव्य, दही और लवण वाले खाद्य पदार्थ अधिक मात्रा में नहीं खाना चाहिए। भूख लगे बिना भोजन नहीं करना चाहिए। इस मौसम में धूप का सेवन, ओस और पूर्व की ओर से आने वाली हवाओं से बचना चाहिए। अधिक व्यायाम तथा सम्भोग भी हानिप्रद है।[419]

संक्षेप में करने योग्य हितकारी सेवन	
हेमन्त, शिशिर और वर्षा ऋतु में	मधुर, अम्ल और लवण रसों का स्निग्ध और उष्ण खाद्य-पदाथा का सेवन।
वसन्त ऋतु में	तिक्त, कटु और कषाय रसों का रूक्ष और उष्ण खाद्य व पेयों का सेवन।
शरद् ऋतु में	मधुर, तिक्त और कषाय रसों का रूक्ष और शीतल खान–पान।
ग्रीष्म ऋतु में	मधुर रस स्निग्ध और शीतल खान–पान

वैसे तो सभी ऋतुओं में सभी (छः) रसों का सेवन करना चाहिए। परन्तु इन उपर्युक्त रसों आदि का सेवन विशेष रूप से तथा अधिक मात्रा में करना चाहिए।

ऋतुचर्या में वर्णित आहार–विहार का सेवन करते हुए यह बात ध्यान देने योग्य है कि ऋतुसंधि[420] अर्थात् ऋतु के अन्तिम और आने वाली ऋतु के प्रथम सप्ताह के बीच पहले वाले आहार–विहारों

---

419. आतपस्य च वर्जनम्।।
"वसां तैलमवश्यायमौदकानूपमामिषम्।
क्षारं दधि दिवास्वप्नं प्राग्वातं चात्र वर्जयेत्।।" — च.सू. 6/44-55

420. ऋतुसन्धिः- ऋत्वोरन्त्यादिसप्ताहादृतुसंधिंरिति स्मृतः।
तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः सेवनीयोऽपरः क्रमात्।। — अ.स.सू. 4/61
असात्म्यजा हि रोगाः स्युः सहसा त्यागशीलनात्।
- "कार्तिकस्य दिनान्यष्टावष्टा वाग्रयणस्य च।
यमदंष्ट्रा समाख्याता स्वल्पभुक्तो हि जीवति।।" — शा.प्र.ख. 2/30

को धीरे-धीरे छोड़ कर ही नई ऋतु के लिए बताये गये आहार-विहार का सेवन आरम्भ करना चाहिए। पहले लिये जाने वाले आहार आदि को एकदम छोड़ कर पूरी तरह नये आहार आदि का सेवन करने से असात्म्य (प्रतिकूलता) होता है। इससे रोग उत्पन्न हो सकते है। इस काल को आचार्य ने यमदंष्ट्रा काल कहा है तथा विशेषकर कार्तिक मास के अन्तिम 8 दिन और अगहन मास के प्रारम्भ के 8 दिनों में उपरोक्त विधि का पालन करने को कहा है।

4. वेग रोध से बचें[421]

यह अनुभव में आया है कि भूख लगने पर जब भोजन आदि नहीं किया जाता, तो एकदम कमज़ोरी आने लगती है, प्यास लगने पर पानी न पीने से शरीर बेजान सा हो जाता है तथा चक्कर, मूर्च्छा आदि भी आ सकते हैं। इसी प्रकार, मूत्र का वेग होने पर यदि मूत्र त्याग न किया जाए, तो पेडू में दर्द होने लगता है, मल त्याग न करने पर पेट में गैस, दर्द आदि के लक्षण पैदा हो जाते है। इन सबसे यह स्पष्ट हो जाता है कि शरीर में कोई भी वेग होने पर उसकी समय पर पूर्ति अवश्य की जानी चाहिए, टालना नहीं चाहिए। भूख प्यास लगना, मल मूत्र के त्याग के लिए वेग होना ये व इसी प्रकार की अन्य इच्छाएं शरीर में स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती रहती है। इन्हें स्वाभाविक वेग कहा जाता है। प्रत्येक चेतन प्राणी में ये स्वाभाविक इच्छाएं पाई जाती है जो समय समय पर आवेगों के रूप में अपने आप प्रकट होती रहती है। इनकी समय पर पूर्ति करना बहुत आवश्यक है। समय पर इनकी पूर्ति न करने से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो सकते है। प्रमुख आवेग 13 माने गये है।[422] जो निम्नलिखित है-

1) मूत्र त्याग
2) मल त्याग
3) सम्भोग अथवा मैथुन
4) अधोवायु का त्याग
5) वमन या उलटी
6) छींकना
7) डकार लेना
8) जम्भाई लेना
9) भूख
10) प्यास
11) रोना या आंसू बहना एवं
12) अधिक परिमाण से तेज़ श्वास
13) निद्रा

जब इन स्वाभाविक इच्छाओं (वेगों) को दबाया जाता है या समय पर इनकी पूर्ति नहीं की जाती

---

421. रोगाः सर्वेऽपि जायन्ते वेगोदीरणधारणैः
वेगधारणशीलस्य च स्वास्थयासम्भवः।
अतोवेगधारण प्रतिषेधेन च रोगानुत्पतिः ।
अष्टांग स.सू. 5 इन्दुकीटीका

422. न वेगान् धारयेद्धीमाञ्जातान् मूत्रपुरीषयोः
न रेतसो न वातस्य न च्छर्द्याः क्षवथोर्न च।
नोद्गारस्य न जृम्भाया न वेगान क्षुत्पिपासयोः।
न वाष्पस्य न निद्रायानिःश्वासस्य श्रमेण च।
च.सू. 7/3-4

तो इसे वेगरोध उत्पन्न होना कहते हैं। इन सबका संक्षिप्त उल्लेख नीचे किया जा रहा है

♦ मूत्र का वेगरोध[423]

मूत्र के वेगरोध (अर्थात मूत्रत्याग की आवश्यकता अनुभव होने पर भी मूत्र न त्यागना) से मूत्राशय तथा लिंग में पीड़ा और पेट के निचले भाग में पीड़ा होती है।

पेट में अफारा और दर्द, मूत्र कृच्छ (मूत्र त्याग में कठिनाई) सिरदर्द तथा शरीर का झुक जाना आदि जटिलताएं उत्पन्न हो जाती हैं ।

इन जटिलताओं का उपचार टब स्नान, मालिश तथा नाक में घी की नसवार डाल कर और तीन प्रकार के एनिमा (आस्थापन, उत्तर बस्ति और अनुवासन) क्रियाओं को करके किया जा सकता है।[424]

♦ मल का वेगरोध

मल का वेगरोध (मलत्याग का वेग होने पर भी मल त्याग के लिए न जाना) करने पर शूल ; तीव्र दर्द, सिरदर्द, मल और अधोवायु (गैस) को त्याग करने में रुकावट, जंघा की पेशियों में ऐंठन, पेट में अफारा आदि शिकायतें उत्पन्न हो जाती हैं।[425]

इनके उपचार के लिए सिकाई, मालिश, टब स्नान, मल द्धार में वर्ति डालना, बस्ति क्रिया (एनिमा) आदि साधनों को प्रयोग में लाना चाहिए। खाने में पपीता, हरी सब्जियां, फलों का रस आदि विरेचक दस्तावर खाद्य और पेय पदार्थो का सेवन उपयोगी है।[426]

♦ मैथुन (वीर्य का वेगरोध)

मैथुन का वेगरोध (सम्भोग की इच्छा होने पर उतेजना के फलस्वरूप वीर्य का वेग होने पर उसे दबा लेना) करने पर लिंग तथा अंडकोषों में दर्द, घबराहट, हृदय प्रदेश में दर्द तथा मूत्र के प्रवाह में रुकावट हो जाती है।[427]

---

423. वास्तमेहनयो: शूलं मूत्रकृच्छं शिरोरूजा ।
विनामो वङ्क्षणानहः स्याल्लिंङ्ग मूत्रनिग्रहे । — च.सू. 7/6
अंगभंगाश्मरीबस्तिमेण्द्रवक्षणवेदना:

424. स्वेदावगाहनाभ्यङ्गान सर्पिषचावपीडकम् । — च.सू. 7/7
मूत्रेप्रतिहतेकुर्यात्रिविधं बस्तिकर्म च ।
मूत्रजेषु च पाने च प्राग्भक्ताच्छस्यते घृतम । — अ.सं.सु. 5/9
जीर्णान्तिकम् चोत्तमया मात्रया योजनाद्धयम।। अवपीडकमेंतच्च संज्ञितम

425. पक्वाशयशिर:शूलं वातवर्चोऽप्रवर्तनम् । — च.सू. 7/8
पिण्डिकोद्वेष्टनाध्मानं पुरीषे स्याद्विधारिते।।
शकृत:पिण्डिकोद्वेष्ट प्रतिश्याय शिरोरूजा: । — अ.सं.सु. 5/6-7
ऊर्ध्ववायु: परीकर्तोंहृदयस्योपरोधनम् ।। मुखेन विद्प्रवृत्तिश्च

426. स्वेदाभ्यङ्गावगाहश्च वर्तयो: बस्तिकर्म च । — च.सं.सु. 7/9
हितं प्रतिहते वर्चस्यन्नपानं प्रमाथि च ।। — च.सं.सु. 7/10

427. मेढ्रे वृषणयो: शूलमङ्गमर्दोहृदि व्यथा भवेत् प्रतिहते शुक्रे विबद्धं मूत्रमेव च। — अ.सं.सु. 5/23
शुक्रात् तत्स्रवणम गुह्यवेदनाश्वयथज्वरा: हृदव्यथामूत्रसंङ्गाङ्गभङ्गवृद्ध्यश्मषण्ढता:।।

इन जटिलताओं को दूर करने के लिए मालिश, टब स्नान, शालिधान और दूध का सेवन, चिकनाई रहित एनिमा क्रिया एवं सम्भोग साधन प्रयोग में लाने चाहिए।[428]

♦ अधोवायु का वेगरोध

अधोवायु का वेगरोध (पेट के निचले भाग में वायु एकत्र होने पर व इसका वेग बनने पर भी संकोच वश मलद्वार से वायु न निकलना) करने पर वायु दोष कुपित हो जाता है। इससे मल, मूत्र और गैस को निकालने में रुकावट, पेट में अफारा और दर्द, थकावट एवं पेट के दूसरे रोग उत्पन्न हो सकते है।[429]

इन जटिलताओं की चिकित्सा के लिए स्नेहन क्रिया (घी, तेल और चिकनाई वाले पदार्थो का सेवन व मालिश आदि) सिकाई, गुदा में वर्ति डालना तथा एनिमा का प्रयोग लाभदायक है। इस स्थिति में पाचक खाद्य और पेय पदार्थों का सेवन करना चाहिए।[430]

♦ वमन (उलटी का वेगरोध)

वमन का वेगरोध की इच्छा या वेग उपस्थित होने पर भी उसे रोकने से खुजली, उदर्द/कोढ, या छपाकी, भोजन में अरुचि, सूजन, चेहरे पर काले दाग, रक्त की कमी, ज्वर, जी मिचलाना, विसर्प (एक प्रकार की चमड़ी का रोग) तथा अन्य चर्म रोग उत्पन्न हो सकते है।[431]

इन रोगों से छुटकारा पाने के लिए वमन चिकित्सा (उलटी लाने की औषधि आदि लेना) धूम्रपान (औषधियों से तैयार), उपवास, रक्त मोक्षण (दूषित रक्त) निकलवाना और विरेचन क्रिया दस्तावर (औषधि का सेवन) को प्रयोग में लाना चाहिए। इसके साथ साथ शारीरिक व्यायाम और रूखे खाद्य व पेय का सेवन भी उपयोगी है।[432]

---

428. तत्राभ्यङ्गोऽडकाहश्च मदिरा चरणायुधाः ।
शालिः पयो निरुहश्च शस्तं मैथुनमेव च ।। — च.सू. 7/11

429. सगेविण्मूत्रवातानामाध्मानं वेदना क्लमः ।
जठरे वाताजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ।। — च.सू. 7/12
अधोवातस्य रोधेन गुल्मोदावर्तरूकक्लमाः ।
वातमूत्रशकृत्सङ्गद्रष्ट्यग्नि वधहृद्गदाः।। — अ.सं.सु. 5/4

430. स्नेहस्वेदविधिस्तत्र वर्तयो भोजनानि च।
पानानि बस्तयश्चैव शस्तं वातानुलोमनम् ।। — च.सू. 7/13

431. कण्डूकोठारुचिव्यङ्गशोथपाण्ड्वामयज्वराः ।
कुष्ठहृल्लासवीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजागदाः।। — च.सू. 7/14
विसर्पकोठकुष्ठाक्षिकण्डूपाण्डवामयाज्वराः ।
सकासश्वासहृल्लासव्यंङ्गश्वयथवो वमेः। — अ.सं.सू. 5/20

432. भुक्तवा प्रच्छर्दनं धमो लङ्घनं रक्तमोक्षणम् ।
रूक्षान्नपानं व्यायामो विरेकश्चात्र शस्यते । — च.सू. 7/15
गण्डूषधूमानांहरं रूक्षं भुक्त्वा तदुद्वमः ।
व्यायामः सुतिरस्रस्य शस्तंचात्र विरेचनम् ।।
सक्षारलवणं तैलमभ्यङ्गार्थं च शस्यते ।। — अ.सं.सु. 5/22

♦ छींक का वेगरोध

छींक का वेगरोध (छींक आने पर उसे रोक देना) करने पर सिर दर्द लकवा, आधाशीशी का दर्द, मन्यास्तम्भ और जननेन्द्रियों में कमज़ोरी आदि रोग उत्पन्न हो सकते है।[433]

इन रोगों की चिकित्सा के लिए सिर से गर्दन तक के भाग की मालिश और सिकाई, धूम्रपान (औषधियों से तैयार), नाक में तेल डालना आदि साधन प्रयोग में लाने चाहिए। वायु शान्त करने वाले पदार्थो तथा भोजन के पश्चात घी का सेवन विशेष उपयोगी है।[434]

♦ उद्गार अथवा डकार का वेगरोध

(डकार आने पर भी उसे रोकना) करने पर हिचकी श्वास (सांस फूलना) शरीर अथवा किसी अंग का कम्पन, भोजन में अरुचि, हृदय और फेफड़ों की क्रियाओं का धीमा पड़ना आदि रोग उत्पन्न हो सकते है।[435]

इनके उपचार के लिए हिचकी रोग के लिए उपयोगी साधनों को प्रयोग में लाना चाहिए।[436]

♦ जम्भाई का वेगरोध[437]

जम्भाई का वेगरोध (जम्भाई आने पर उसे रोकना) करने पर शरीर का मुड़ जाना, आक्षेप (convulsion) संकुचन (सिकुडन), अंगों में सुन्नता, कम्पन आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं ।

इनकी चिकित्सा के लिए वायु को शान्त करने वाले औषधियों और पदार्थो का सेवन करना चाहिए।

♦ क्षुधा (भूख) का वेगरोध[438]

क्षुधा का वेगरोध (भूख लगने पर भी भोजन न करना) करने पर शरीर में कमज़ोरी और क्षीणता (पतलापन) आ जाती है। शरीर का रंग बदलने लगता है तथा घबराहट, अरुचि और चक्कर आदि आने लगते हैं।

---

433. मन्यास्तम्भः शिरःशूलमर्दितार्धावभेदकौ ।
इन्द्रियाणांच दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्धिधारणात् ।। — च.सू. 7/16
शिरोर्तीन्द्रियदौर्बल्यमन्यास्तम्भार्दितं क्षुतेः — अ.स.सु. 5/12

434. तत्रोर्ध्वजत्रुकेऽभ्यङ्गः स्वेदो धूमः सनावनः ।
हितं वातघ्नमाद्यं च घृतं चौतरभक्तिकम्।। — च.सू. 7/17
तीक्ष्णधूमाञ्जनाघ्राणनावनार्कविलोकनैः ।
प्रवर्तयेत्क्षुतिं सक्तां स्वेदावभ्यङ्गौ च शीलयेत।। — अ.सं.सु. 5/13
योज्यं वातघ्नमन्नं च घृतं चौत्तरभक्तकम्। — च.सू. 7/18

435. हिक्का श्वासोऽरुचिः कम्पो विबन्धो हृदयोरसोः । — च.सू. 7/18

436. उद्गारनिग्रहात्तत्र हिक्कायास्तुल्यौषधम् ।।

437. विनामाक्षेपसङ्कोचाः सुप्तिः कम्पः प्रवेपनम् । — च.सू. 7/19
जृम्भया निग्रहात्तत्र सर्वं वातघ्नमौषधनम् ।। — अ.सं.सू. 5/19
जृम्भायाः क्षववद्रोगाः सर्वाश्चानिलजिद्विधिः ।।

438. कार्श्यदौर्बल्यवैवर्ण्यङ्गमर्दोऽरुचिर्भ्रमः । — च.सू. 5/20
क्षुद्वेगनिग्रहात्तत्र स्निगधोष्णं लघुभोजनम् ।।

इन जटिलताओं से छुटकारा पाने के लिए स्निग्ध (चिकनाई वाला) व हलका भोजन करना चाहिए।

♦ प्यास का वेगरोध[439]

प्यास का वेगरोध (प्यास लगने पर भी जल आदि पेय पदार्थ न पीने) करने पर गला और मुख सूखने लगते हैं। बहरापन, थकावट, कमज़ोरी तथा हृदय में दर्द आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते है।

इनके उपचार के लिए रोगी को ठण्डे और शान्तिदायक पेय पदार्थ पीने चाहिए।

♦ अश्रु (आंसुओं का वेगरोध)[440]

अश्रु का वेगरोध (आंसू को रोकना) करने पर नाक में सूजन, आंखों के रोग, हृदय रोग, भोजन में अरुचि, चक्कर आदि जटिलताएं उत्पन्न हो जाती हैं। इनकी चिकित्सा के लिए मद्य सेवन, नींद तथा हंसी मज़ाक की बात करना आदि साधन उपयोगी हैं।

♦ नींद का वेगरोध[441]

नींद का वेगरोध (नींद आने पर भी न सोना) करने पर जम्भाइयां आना थकावट तथा सुस्ती आदि उत्पन्न हो जाते हैं । सिर में दर्द, आंखों में भारीपन और चक्कर जैसी शिकायतें देखी जाती हैं।

इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिए पूरा आराम और नींद लेनी चाहिए। वायु को शान्त करने वाले आहार विहार का सेवन उपयोगी है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वस्थ रहने के लिए इन सब स्वाभाविक वेगों की पूर्ति ठीक समय पर और उचित ढंग से की जानी चाहिए। इन्हें दबाना नहीं चाहिए। स्वास्थ्य की रक्षा के लिए इन वेगों की उसी समय पर पूर्ति करना आवश्यक है तथा इनको रोकने (धारण) से स्वास्थ्य का नाश होता है।

---

439. कण्ठास्यशोषोबाधिर्य श्रमः सादो हृदि व्यथा ।
पिपासानिग्रहातत्र शीतं तर्पणमिष्यते ।। च.सू. 7/21
शोषाङ्गसादबाधिर्यसम्मोहभ्रमहृदगदाः ।
तृष्णाया निग्रहात्तत्र शीतःसर्वोविधिर्हितः।। अ.सं.सू. 5/14

440. प्रतिश्यायोऽक्षिरोगश्चारूचिर्भ्रमः ।
बाष्पनिग्रहाणत्तत्र स्वपनो मद्यं प्रियाः कथाः ।। च.सू. 7/22
पीनसाक्षिशिरोहृद्रुङ्मन्यास्तम्भारुचिभ्रमाः ।
सगुल्मावाष्पस्तत्र स्वप्नोमद्यं प्रियाः कथाः ।। अ.सं.सू. 5/19

441. जृम्भाऽग्मर्दस्तन्द्रा च शिरोरोगोऽक्षिगौरवम् ।
निद्राविधारणात्तत्र स्वप्नः संवाहनानि च ।। च.सू. 7/23
निद्राया मोहमूर्धाक्षिगौरवालस्यजृम्भिकाः ।
अङ्गमर्दश्च तत्रेष्टः स्वप्नः संवाहनानि च ।। अ.सं.सु. 5/16

नियन्त्रण करने योग्य प्रवृत्तियां[442]

प्रत्येक मनुष्य के अन्दर स्वभाव से ही कुछ वृतियां ऐसी बन जाती है, जो उसके स्वयं के लिए तथा समाज के लिए हानिकारक होती है। इस प्रकार की प्रवृतियों के प्रभाव से लोभ, लालच, भय, क्रोध, शोक, ईर्ष्या, अहंकार, निर्लज्जता और आसक्ति से प्रेरित होकर कार्य किये जाते हैं। प्रत्येक मनुष्य को अपनी शान्त और सुखी जीवन के निर्माण के लिए इस प्रकार के सभी वाचिक एवं शारीरिक कुकर्मो और अविवेक पूर्ण इच्छाओं को नियन्त्रण में रखना चाहिए। इसी प्रकार कठोर शब्दों गाली गलोच एवं असम्बद्ध शब्दों के प्रयोग से भी बचना चाहिए। जिन कर्मो से दूसरों को मानसिक रूप से कष्ट पहुंचने की सम्भावना हो, उन कार्यो तथा दूसरे की स्त्रियों के साथ मैथुन करना, चोरी आदि कार्यो से भी सदा दूर रहना चाहिए। मनुष्य मन, वचन और कर्म से इस प्रकार के गलत कार्यो से बचा रहता है, वह स्वयं भी प्रसन्न रहता है तथा उसके परिवार में भी सुख शान्ति बनी रहती है। वह धर्म अर्थ और काम की पूर्ति करके उनके फल को आनन्द से भोगता है।[443]

---

442. इमांस्तु धारयेद्वेगान हितार्थी प्रेत्य चेह च ।
साहसानामशस्तानां मनोवाक्कायकर्मणाम् ।। च.सू. 7/26

443. पुण्यशब्दो विपापत्वान्मनोवाक्कायकर्मणाम् ।
धर्मार्थकामान्पुरूषः सुखी भुङ्क्ते चिनोति च ।। च.सू. 7/30